ठण्डी सड़क

कुटिलेश

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178410
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H87 K97T Accession No. H2312

Author कुटिलेश

Title ठण्डी सड़क 1958

This book should be returned on or before the date last marked bel

ठण्डी सड़क

कुटिलेश

... Graduate Library
... of Arts & Commerce, O. U

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी—१

प्रकाशक : ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी–१.

मुद्रक : राजेन्द्र प्रेस, वाराणसी–१.

संस्करण : तृतीय—११००
[मई : १९५८]

मूल्य : १ रुपया ५० नये पैसे

समर्पण

मेरे जीवन की धूप-छाँह !

वह भी एक दिन था जब तुम्हारे पिता ने तुम्हें मुझे समर्पित किया था। आज मैं तुम्हे यह पुस्तक समर्पण कर उनके उस ऋण से मुक्त होने की चेष्टा कर रहा हूँ। स्वभावतः तुम तो 'नही-नही' कहोगी ही, लेकिन तुम्हारी 'नहीं-नही' में 'हाँ' छिपा रहता है, इसे मै अच्छी तरह जानता हूँ।

—कुटिलेश

हाल्ट !

पहले अपने-राम का विचार था कि जो पुस्तक लिख सकता है वह भूमिका भी लिख सकता है, अतः पुस्तकों में भूमिका की आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु जब आज 'ठण्डी सड़क' तैयार हुई तो भूमिका की आवश्यकता का पता चला और झख मार कर लिखना भी पड़ा।

बात यह है कि आज ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है जिन्हे अपनी विद्वत्ता पर घमण्ड है। मैं उन लोगों में से हूँ जिन्हें अपनी मूर्खता पर घमण्ड है। दस-बीस बरस की बात होती तो जिक्र भी न करता, परन्तु शायद सृष्टि के आरम्भ से ही दुनिया मूर्खो की प्रत्येक बात पर हँसती आई है। अतः इच्छा यह हुई कि देखूँ मेरी मूर्खता का प्रसार किस हद तक है। यदि पाठक इस पुस्तक की बातों पर हँसें तब तो परिश्रम सफल हुआ, अन्यथा भूल मालूम हो जायगी और भविष्य में गर्दन उठा कर मुझे भी कहने का साहस होगा कि विद्वान हूँ।

बस ! यह तो हुई सबसे बड़ी बात; किन्तु दो-चार छोटी बातें और हैं.

[१] 'ठण्डी सड़क' में जो कुछ ईंट, पत्थर, मट्टी और चूना लगा है वह घर का है। आवश्यकतावश जो कुछ उधार लिया गया है वह भी आज से अपना हो गया। नागरिक नियम को तोड़कर यदि कोई दावेदार खड़ा होगा, तो बुरा फँसेगा।

[२] पुस्तक के नामकरण का कारण कानपुर या दिल्ली की ठण्डी सड़क नहीं है, बल्कि है दिमागी खुराफात।

[६] प्रकाशक महोदय झांसा दे कर मेरा फोटो भी देना चाहते थे। परन्तु एक तो मेरा फोटो ही ऐसा नही है कि जिस से पुस्तक की शोभा बढ़े और फिर बहुत सम्भव है 'ठण्ढी सड़क' पसन्द न आने पर पाठक मारने-पीटने का प्रोग्राम बनावें, अतः हुलिया देना मैंने उचित नही समझा।

[४] कला के पारखी कलाकार को भी पहिचान ही लेते है। अतः यदि इस पुस्तक में कोई कला की बात मिल जाय तो मेरा सौभाग्य है। वैसे मैं ने कला का ध्यान न रख कर गला दबा कर हँसा देना ही अपना ध्येय रखा है।

अन्त में एक बात और है। परिस्थितिवश जिस प्रकार हिन्दी की अन्य पुस्तकों में अशुद्धियाँ रह जाती हैं, उसी प्रकार इस पुस्तक में भी हो सकती हैं। आवश्यकता से अधिक अशुद्धियाँ रह गयी हों तो और भी खेद का विषय है। परन्तु अब मै क्षमा क्यों नहीं माँगता, इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि भूल स्वीकार भी करूँ तो आप मुझ से साधारण व्यक्ति को आदर्शवादियों की श्रेणी में न रखेंगे। दूसरे क्षमा न करने के अतिरिक्त और आप कर ही क्या लेंगे? अतः सौ बार गरज हो तो इस 'ठण्डी सड़क' पर टहलिये अन्यथा काफी मैदान आप के सामने है। धूप में एक टाँग से खड़े हो कर तपस्या कीजिये, मुझे कोई आपत्ति न होगी।

—कुटिलेश

छींटे......

				पृ० सं०
१.	प्रेम-पहाड़ा	...	...	६
२.	प्रेम-रिसर्च-सोसाइटी	...	...	१७
३.	प्रेम-प्राइमर	...	...	२५
४.	प्रेम की-चोट	...	...	३१
५.	मेरी प्रेमपुर-परिक्रमा	...	...	४०
६.	प्रेमी-प्रेमिका-कानफरेन्स	...	...	४६
७.	प्रेमपुरी-प्रदर्शन	...	...	५२
८.	भजु गोविन्दम्	...	...	५६
९.	प्रेम की खेती	...	...	६३
१०.	विवाह-विमर्श	...	...	६८
११.	जूताचोरों का इतिहास	..	...	७३
१२.	चमार-चौदस	...	...	८०
१३.	मेरी शादी	...	...	८३
१४.	लखपती बनने के उपाय	...	...	९१
१५.	कहावत-कल्पद्रुम	...	...	९९
१६.	अलबेले रिसर्च-स्कालर	...	...	१०३

—:०:—

प्रेम-पहाड़ा

बीससे लेकर बीस हजारकी उपस्थित जनतामें एक ध्वनिसे, और वह भी गगन-भेदी ध्वनिसे, भाषण देकर, केवल रूमालसे माथेका पसीना पोंछकर बैठ जाना उन्हींका काम था। सारे शहरमें वे इसीके लिये बदनाम भी थे। कहीं भी चार आदमी इकट्ठे हों और उन्हें रोकना हो, आप जाकर बुला लाइये। क्या मजाल कि कोई उठकर चला जाय। भाषणका विषय बता दीजिये तो भी "रांड़का चर्खा" चला देंगे, और न बताइये तो भी नयेसे नये विषयपर उनके नयेसे नये विचार सुन लीजिये।

उस दिन जब 'प्रेम-पहाड़ा' जैसा गहन विषय दिया गया तो लोगोंने कमसे कम यही आशा की थी कि नाव पार नहीं लगेगी, परन्तु वाहरे व्याख्यानदाता! जैसे छः महीने पहले ही सूचना मिल चुकी हो! वे बोले और बखिया उधेड़ कर बोले।

पहले तो आपने धीरेसे ही कहा—

"मैं प्रेम करता हूँ।
हम प्रेम करते हैं।
तू प्रेम करता है।
तुम प्रेम करते हो।
वह प्रेम करता है।
वे प्रेम करते हैं।"

इसके पश्चात् अपनी उसी पुरानी आवाजमें बोले—

आरम्भ कब और कैसे होता है, यह एक तो एक किसीको मालूम ही नहीं होता है, और मालूम भी होता है तो सर्व प्रथम रोगीको ही। दूसरोंको तो रोगीके बताने पर पता लगता है।"

श्री श्रीभावप्रकाश वैद्य तो प्रेमको मृगीका दौरा समझते हैं, क्योंकि वे भी एक स्थानपर लिखते हैं—

"·········प्रेमका दौरा आनेपर मनुष्यकी दशा बड़ी विचित्र हो जाती है। मरीजकी तबियत न घरपर लगती है और न बाहर। एक गलीकी परिक्रमा कर आता है तो समझता है जैसे सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर आया है, और उसी प्रकार उसे आनन्दका अनुभव होता है। क्षणमें रोना, क्षणमें हंसना उसका स्वभाव हो जाता है। दौरा जब जोर पकड़ता है तो प्रेम-व्याधिका रोगी शरीरके कपड़े भी नोचने लगता है। इन दिनों सड़कपर पड़ा हुआ केलेका छिलका उसका जानी दुश्मन हो जाता है। होश-हवाश इस प्रकार गायब रहते हैं कि आप काले जूतों और लाल जूतोंका जोड़ा सामने रखिये, तो न तो उसे रंगमें अन्तर दिखाई पड़ेगा और न चमड़ेमें! आंखोंकी दशा विचित्र हो जाती है। रोगी देखता होगा छज्जेकी तरफ और आपको मालूम होगा कि कुछ खो गया है और आंखें जमीनमें गड़ाये ढूंढ़ रहा है।

"बन्धुओ! आप लोनोंने अङ्गरेजीमें पढ़ा होगा (Love is Blind) अर्थात् प्रेम अन्धा होता है। मेरा भी इस सम्बन्धमें यही विचार है। मैं अपना ही एक अनुभव आप लोगोंको बतलाये देता हूँ। बात बहुत दिनोंकी नहीं है, मैं प्रेम-रोगसे ग्रसित था। किसीके पत्रकी प्रतीक्षामें था। एक दिन पोस्टमैनने एक लिफाफा लाकर मुझे दिया। प्रेम-बाहुल्यके कारण मुझे यह होश ही नहीं रहा कि मेरे सामने कौन है। अपनी प्रेमिकाको गले लगानेके आवेशमें मैंने पोस्टमैनको ही सीनेसे चिपटा लिया। सुनते हैं,

पोस्टआफिस वाले अब इस प्रकारकी कोई व्यवस्था कर रहे हैं कि प्रेम-पत्रोंको बांटनेके लिये हृष्ट पुष्ट पोस्टमैन ही भेजे जाया करें ताकि प्रेमी उनका अधिक नुकसान न कर सकें तथा ऐसे अन्धे प्रेमियोंकी वे आँखें भी उसी वक्त खोल दें।

भाइयों! अभी तक हमारा और आपका विचार कदाचित् यही था कि प्रेमी भी हमारी और आपकी भांति ही भोजन करता होगा परन्तु अब उन बातोंको भूल जाइये। प्रेमी खानेकी ये वस्तुयें तो प्रेमका दौरा आते ही छोड़ देता है। प्रेम-विशारदोंका कहना है कि प्रेमी पहले तो बाजारकी हवा खाता है और फिर उसे ९९ प्रतिशत जेलखानेकी हवा खानी पड़ती है। किन्तु कदाचित् जेलखानेकी हवा खानेसे प्रेमी बच गया, तो फिर उसे केवल ६ वस्तुयें और खानी पड़ती हैं। उनके नाम ये हैं--

गम, कसम, धक्का, धोखा, जूता और जहर।

"अब बहुतसे लोग कहने लगते हैं कि बड़ा प्रेमी होगा तो अपने घरका होगा, हमारा क्या कर लेगा? परन्तु कदाचित् ऐसा कहनेवालोंको कभी प्रेमीसे काम नहीं पड़ा है। अरे! प्रेमीकी शक्ति अनन्त होती है। पर वह उसका उपयोग नहीं करता। वह सन्त या घोंघाबसन्त बनकर रहता है और यही कारण है कि उसका प्रलय रूप प्रकट नहीं होता है।

मैं तो कहूँगा कि प्रेमी चाहे तो जिस किसीका भी घरसे निकलना बन्द कर सकता है। प्रेमी अगर रोये तो वास्तवमें वह नजारा पेश कर सकता है, जिसके लिये महाकवि नजीर, ने कहा है कि--

रोऊंगा अगर आकर तेरी गली में यार।
पानी ही पानी होगा हर एक घर के पास॥

भला सोचिये प्रेमीको भुनगा समझनेवालोंके मकानके इर्द-

गिर्द कहीं "प्रेमी एक घण्टा भी रो आवे तो तीन दिनकी मूसलाधार वृष्टिकी समा बँध जाय ! नाव-डोंगी किसीके घरपर तैयार रहती नहीं है। बाजार भी जाना हो तो किधरसे जाय ?"

खैर यही मान लीजिये। कोई साहब "इङ्गलैण्डमें नौ मास" पुस्तक लिखना चाहते हैं, परन्तु इसके पहले इङ्गलैण्डमें नौ मास रहना भी आवश्यक है, और फिर इसके पहले रास्ता भी तो पार करना पड़ेगा। लेकिन एक प्रेमी कहता है कि "मैं अगर आह करूँ दममें समुन्दर जल जाय।" यदि ऐसा प्रेमी अदावतसे "समुन्दर" ही सोख ले तो जहाजका रास्ता कहांसे रहेगा ? तब पुस्तक लिखनेवाले महाशय अपने बालकपन पर ही आँसू बहा-बहाकर पुस्तकका नाम "पेटमें नौ मास" रख सकते हैं।

सज्जनबृन्द ! यद्यपि 'रहीम' कवि कह गये हैं कि:—

रहिमन वे नर मर चुके, प्रेम करन कहुँ जांय।
उनसे पहले वे मुये, घर बैठे जमुहांय॥

परन्तु प्रेमीकी तो क्या किसीकी भी मृत्यु समझ लेनेसे ही नहीं हो सकती। मृत्युके लिये तो सचमुच मरना ही पड़ेगा।

तब लोक-नीतिग्रन्थ 'आल्हा' में आता है कि:—

बारह बरस तक कुत्ता जीवे औ, तेरह तक जियै सियार।
बरस अठारह प्रेमी जीवै, आगे जीवनका धिरकार॥

परन्तु भाइयों ! सच बात तो यह है कि मैं न तो आल्हाको नीति अथवा प्रामाणिक ग्रन्थ ही मानता हूँ और न यहां यही विवेचन करनेके लिये खड़ा हुआ हूँ कि प्रेमी कितने दिन जीता है। मुझे तो उन लोगोंकी बातका उत्तर देना है, जो कहते हैं कि प्रेमीकी मृत्यु वियोगकी वेदनासे होती है।

डाक्टर कवि—'गालिब' साहब कहते थे कि 'दर्दका हदसे गुजरना है दवा हो जाना।' वेदनासे विदाई कहां ? हमारे जैसे

प्रेम'रिसर्च' स्कालरोंका कहना तो यह है कि प्रेमीकी मृत्यु संयोगसे होती है। जिस प्रकार लाटरीका टिकिट निकल आनेपर रूपया पानेवालोंका हार्ट कभी-कभी फेल हो जाता है, उसी प्रकार मिलनके आनन्दमें प्रेमियोंका भी हार्ट फेल हो जाता है, अथवा प्रेमी कभी-कभी चुल्लू भर पानीमें डूबकर इस जीवन नौकाको किनारे लगा देता है।

जिस समय फरहाद पहाड़ खोद रहा था, उसने शीरीके सम्बन्धमें ख्याल किया था कि हाय! इसका भी कलेजा कैसा पत्थरका है। और उसी समय उसने यह तय किया था कि—यदि मैं अपने इस काममें सफल हो जाऊंगा तो और कहां-कहां पत्थरके कलेजे हैं उनका पता लगाऊंगा और इन्हीं पत्थरोंसे एक 'प्रेम-भवन' बनाकर दुनियांमें सर्वश्रेष्ट आश्चर्यकी सृष्टि करूंगा। असंख्य जनता तो 'प्रेम-भवन'के दर्शनार्थ आवेगी ही, परन्तु एक दिन ऐसा भी निश्चित कर दूंगा कि 'प्रेम-भवन' के सामने मैदानमें मेला लगा करेगा।

मुझे कहते हुये दुःख होता है कि फरहाद पहाड़ खोदनेसे पहलेही इस संसारको छोड़ गया और 'प्रेम भवन' की स्कीम आइसक्रीममें ही पड़ी रह गई। सन्तोष यही है कि अब पुनः लोगोंका ध्यान इस ओर गया है और बड़े-बड़े शहरोंमें प्रेम-क्षेत्र खुल गये हैं। कुछ खास नगरोंके प्रेम-क्षेत्रोंके नाम ये हैं:—

(१) शुक्ला स्ट्रीट, ह्वाइट स्ट्रीट—बम्बई।
(२) चावड़ी बाजार—दिल्ली।
(३) डिब्बी बाजार—लाहौर।
(४) फुलट्टी बाजार—आगरा।
(५) चौक बाजार—लखनऊ।
(६) दालमण्डी—बनारस।

(७) मूलगंज—कानपुर।

(८) सोनागाछी, रामबगान—कलकत्ता।

इसलिये हे भाइयों! रेलवे कम्पनी समय समय पर जो कनसेशन टिकटका स्वर्ण-सुयोग दिया करती है उससे आप लोग लाभ उठाया करिये और इन प्रेम-क्षेत्रोंके दर्शनकर पैसेका सदुपयोग करते हुए जीवन सफल बनाइये।

वास्तवमें जिस असार-संसारमें अखबार निकलते हैं और बन्द हो जाते हैं उसमें यदि कुछ बेटे 'गया पिण्डदान' कर देते हैं तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है! संख्या तो हमें उनकी देखनी है जो प्रेम जैसे पुण्य कार्य्यको कर समाजके प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हैं और मानव-जीवनके कर्त्तव्यको निभाते हैं। और सत्य भी तो है, जिसने मनुष्य जन्म लेकर प्रेम-पहाड़ा नहीं पढ़ा, जिसने सौ सौ धक्के खाकर तमाशा नहीं देखा, जिसने टट्टीकी ओटमें शिकार नहीं खेला एवं जिसके पहले सीने और फिर सिरमें दर्द नहीं हुआ, उसने इस पृथ्वीको व्यर्थ ही तो बोझिल किया है!

प्रेम-रिसर्च-सोसाइटी

मन्मथ महाराजकी महती मायासे "प्रेम रिसर्च सोसाइटी" का प्रथम वर्ष कुशल अकुशल और सकुशल जैसा भी समझिये समाप्त हो गया। आरम्भिक अनेक कठिनाइयोंका सामना जब सभी सभा सोसाइटियोंको करना पड़ता है, तब प्रेम रिसर्च सोसाइटीको किस रूपमें करना पड़ा होगा, इसे तो भुक्तभोगी ही जानते हैं, परन्तु येनकेन प्रकारेण विघ्न-बाधाओंके जटिल कुञ्जोंको एक मस्त हथिनीकी भांति चीरती-फाड़ती सोसाइटी प्रकाशमें आ गयी। यह हमारे लिये, आपके लिये, आपके इष्ट मित्रोंके लिये, सारी जनताके लिये, मुर्दोंके लिये, जिन्दोंके लिये, गरज यह कि 'यत् किञ्चित् जगत्यां जगत्' सभी के लिये परम संतोषकी बात है। आज सोसाइटीके इस वार्षिक कार्य-विवरणको लेकर हम वर्ष भरकी सारी अपत्तियोंको भूल गये हैं। अतः प्रसन्नताके साथ थोड़े शब्दोंमें यह बतलाना चाहते हैं कि सोसाइटीने अपने इस बाल्यजीवनमें ही जिस प्रकारकी क्रान्ति मचा दी है। गजब ढालनेवाली इस सोसाइटीका संक्षिप्त कार्य-विवरण कलेजे पर हाथ धरकर सुनिये।

चन्देसे मुक्ति

सोसाइटीके जिन सदस्योंने मासिक सहायताके नामपर कर्मचारीको केवल टाल दिया है, वे तो अब बिलकुल भूल गये होंगे, लेकिन जिन्होंने एक मासका भी बिल चुकाया है, उन्हें अच्छी तरह याद होगा कि सोसाइटी पहले सदस्योंसे दो आना मासिक

चन्दा लिया करती थी। चन्देके इस नियमको लाभप्रद समझकर छः मास तक जीवित भी रखा गया, परन्तु पीछे जब भूल मालूम हुई, तो इस नियमको गोली मार दी गयी। बात यह हुई कि एक वृद्ध महोदय सोसाइटीके सदस्य थे और उन्होंने अपना सारा जीवन विभिन्न संस्थाओंके नामपर चन्दा मांगनेमें ही बिताया था। परन्तु एकबार उन्होंने ही जब अपना 'बिल' चुकानेके लिये सोसाइटीके कर्मचारीको उल्टी-सीधी टेढ़ी-मेढ़ी बातें सुनायी, तो सोसाइटीने चन्देके प्रश्नपर विचार किया। बड़े वाद-विवादके बाद सोसाइटीकी कार्यकारिणी इस नतीजेपर पहुँची कि अनेक सभा-सोसाइटियोंके बढ़ जानेसे जनताके कान इतने तङ्ग हो गये हैं कि अब चन्दा जैसा शब्द आ ही नहीं सकता बस, तबसे सोसाइटीने चन्देका नियम उठा दिया है और अब कोई भी व्यक्ति 'केवल सोसाइटी प्रेम' प्रदर्शित कर आजीवन-सदस्यताकी श्रेणीमें अपना नाम हमारे क्लर्कों द्वारा लिखवा सकता है। सोसाइटी-प्रेमियोंको यह जानकर हर्ष होगा कि 'सोसाइटी-प्रेम' वाले नियमसे सदस्योंकी संख्या अब उत्तरोत्तर ही नहीं, दक्षिणो-दक्षिण पूर्वापूर्व और पश्चिमोंपश्चिम भी बढ़ रही है। सोसाइटी अब इसी नियमको बनाये रहेगी। आशा है कि जनता इस नियमसे अधिकाधिक लाभ उठायेगी।

रिसर्च-विभाग

अभी सोसाइटीको जुम्मा जुम्मा आठ दिन तो हुए हो, परन्तु फिर भी रिसर्चके कार्यमें दिनों दिन सफल होती जा रही है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है।

सर्वप्रथम रिसर्च सोसाइटीने प्रेम ही पर कृपा की है और जैसा कि लोग कहा करते हैं कि प्रेम सर्वत्र है, सोसाइटीने भी इसे मान लिया था, परन्तु जब रिसर्च की, तो उसे पता लगा कि प्रेम

सर्वत्र होनेसे ही क्या ? विशुद्ध प्रेम, जिसे हमारे बङ्गाली भाई खांटी प्रेम बोलते हैं, बाजारमें है ही नहीं।

दूसरी रिसर्च इस सम्बन्धमें हुई कि अभीतक सड़कपर जो लोग केलेके छिलके पर पैर रखते ही गिर पड़ते थे, उसके लिये सड़कपर लापरवाहीके साथ छिलके फेंक देने वाली जनता दोषी ठहरायी जाती थी। हमारी सोसाइटीने जब इस सम्बन्धमें रिसर्च की तो पता चला कि ये अपनी सोसाइटीके गँवार सदस्य ही हैं, जिनकी आंखें दूसरी ओर रहती हैं, और पैरके नीचे सांप पड़ा है कि बिच्छू, कुछ नहीं देखते। आंखोंकी इन हरकतोंसे पैर धोखा दे जायं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

आपको स्मरण होगा कि अभी हालमें दी प्रोफेसर Wrong Right अपनी Day Night और Dark Light नामक दोनों पुस्तकों द्वारा जनता को इस बातके लिये गुमराह कर रहे थे कि बच्चोंको बचपनसे ही प्रेम की शिक्षा दे दी जानी चाहिये। हमारी सोसाइटीने अपनी तीसरी रिसर्च इस सम्बन्धमें की। सोसाइटीने रिसर्चके बाद अपने 'कहिये, क्या समझे ?' ट्रैक्ट द्वारा जनताको यह मूलमन्त्र बताया कि जबतक बच्चोंमें काम-शास्त्र और कोकशास्त्रकी पुस्तकें पढ़नेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति न आ जाय, तबतक प्रेमकी दिशामें पैर बढ़ाना ही अस्वाभाविक होगा, बल्कि-इसके बाद भी थोड़ा सन्तोष करनेकी आवश्यकता होती है। जिन दिनों ऐसी प्रवृत्ति मालूम हो, सबेरे चारपाई छोड़ते ही यह सोचना चाहिये कि आज रात भर हमें नींद आयी है कि नहीं ? जबतक उत्तर 'नहीं' मिलता रहे, तबतक शान्त रहे, लेकिन जिस दिन ऐसा जान पड़े कि आज रातभर नींद नहीं आयी, रह रह-कर कोई दिलमें चिकोटी-सी काटता रहा है, बस समझ ले कि प्रेम करनेके दिन ही नहीं, रातें भी आ गयी हैं। ऐसी ही अवस्थामें

शिकारकी तलाश करनी चाहिये। हां, एक बातका विश्वास कर लेना चाहिये कि न सोने देनेवाले खटमल तो नहीं हैं।

हमारी सोसाइटीने चौथी रिसर्च अष्टम एडवर्डके सम्बन्धमें की है और यह निष्कर्ष एक वर्षके भीतर ही निकाल लिया कि उनमें 'रसखान' की आत्माका अंश है। 'वा लकुटो अरु कामरिया पर राज तिहूंपुरको तजि डारों' रसखानकी ही आत्माकी पुकार थी। 'तिहूंपुर' का राज्य तो था ही नहीं, परन्तु उसी आत्माके प्रभावसे इन्होंने भी, जो कुछ राज्य था, छोड़ दिया। वा लकुटी और कामरिया के स्थान पर भृकुटी और कमरियाके (पतली कमरिया) पीछे ही छोड़ दिया, यह तो और भी गौरवकी बात है।

सोसाइटी रिसर्चका कार्य बराबर करती जा रही है आशा है कि भविष्यमें अनेक उपयोगी विषयोंकी भी रिसर्च कर डालेगी।

प्रचार-विभाग

'खुल गयी, खुल गयी प्रेम रिसर्च सोसाइटी खुल गयी' इस प्रकार का हैंडबिल तो सोसाइटी खुलनेके पहले ही निकल चुका था परन्तु इसके बाद भी 'कहिये, क्या समझे ?' 'जाको जापर सत्य सनेहू' तथा 'हम बहते हुए दरियामें आग लगा देंगे ?' आदि शीर्षकोंसे कितने ही हैण्डबिल, पोस्टर और ट्रैक्ट प्रकाशित किये गये और जनता पर उनका काफी असर भी पड़ा। 'कलेजा दबाये बैठे हैं ?' शीर्षक ट्रैक्टका तो इतना प्रभाव पड़ा कि जिस दिन तीन करोड़ छपकर बँटा, हाथोहाथ निकल गया और फिर न लौटा। केवल एक सज्जन ही एक पन्ना पा सके। नलके पास जाकर पानकी पीक उन्होंने धो डाली और भीगा पन्ना पाकिटमें ठूंसकर सरपर पांव रखकर भागे। कितने ही लोग उनके पैरोंपर सर रखकर पन्ना मांगनेके लिये लालायित थे। परन्तु जैसा कि बताया गया है, वे तो अपने पांव सरपर रखे भाग रहे थे।

खैर ! सोसाइटी अपने प्रचार विभागको भी दृढ़ बनायेगी और अपना सन्देश देशके कोने कोनेमें पहुँचानेके लिये शीघ्र ही 'प्रेमी-प्रेमिका-पत्रिका' का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर देगी।

दातव्य-औषधालय

सोसाइटीका दातव्य औषधालय, जैसा कि आप लोगोंको मालूम है, चल रहा है। रोगियोंकी संख्या दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ रही है, यह परम सन्तोषकी बात है। घरोंमें बेबसीकी हालतमें पड़े रहनेसे यह अच्छा हुआ कि रोगी औषधालयमें आ गये। अन्य औषधालयोंमें दवा डाक्टरकी इच्छानुसार दी जाती है, परन्तु सोसाइटीने यह प्रबन्ध किया है कि दवा रोगीके इच्छानुसार दी जाय। जो रोगी मौतको ही गले लगाना चाहता है उसके गले नागर नवेली लगानेका प्रबन्ध नहीं किया जाता। प्रेम-व्याधिके रोगियोंके स्वागत करनेके लिये दातव्य औषधालय ई० आई० आर० के बुकिंग आफिसोंकी भांति चौबीसों घण्टा खुला रहता है। आशा है कि रोगी अधिकाधिक संख्यामें पधारकर हमारे उत्साह और कम्पाउण्डरोंकी संख्याको बढ़ाकर अनुगृहीत करेंगे।

आय-व्ययका ब्योरा

आय—वर्ष भरमें जनताकी कृपासे जो कुछ प्राप्त हुई थी उसे रोकड़में जमा किया नहीं जा सकता था, अतः वह तो सीधे कंगाल बैंकमें जमा होती रही है, परन्तु नकद रुपयोंके ब्योरेमें १३।≈) तो जिस चन्देका ऊपर जिक्र हुआ है उससे आये थे, और शेष जितनी खर्चके खातोंमें रकम अधिक खर्च हुई है उसे विशेष सहायतामें समझना चाहिये। विशेष सहायतामें, प्रश्न हो सकता है कि किसका कितना रुपया है ? परन्तु जैसा कि विशेष

सहायताके दानी महानुभावोंकी इच्छा है, दानीका नाम और रकम दोनों ही गुप्त रखे जाँय, हम व्योरा देनेमें असमर्थ है।

व्यय—खर्च बहुत सोच समझकर ही किया गया है परन्तु फिर भी जनताकी जानकारीके लिये हम व्योरा दे रहे हैं।

१६≡) कच्चे धागे खाते, जिनमें बांधकर सदस्य सोसाइटीकी मीटिंगोंमें लाये जाते रहे।

१७।≡) के रूमाल खरीदे गये, जिनसे रोते हुये प्रेमियोंके आँसू पोछनेका काम सेवा विभाग वाले करते रहे।

१२१—) वियोगसे तड़पते हुओंके सामने उनकी प्रेमिकायें पहुँचायीं जाती रहीं, इसलिये खर्च हुए। इनमें ८० प्रतिशत तो सोसाइटीको धन्यवाद देनेके लिये अब भी जीवित हैं और शेष २० प्रतिशत जो अब नहीं रहे वे गोदीमें सर रखकर आनन्दसे जा सके, यह सोसाइटीके लिये गौरवकी बात है।

२७≈) दमकलोंका चार्ज दिया गया, जिनसे समय समयपर जलते हुए हृदय बुझवाये जाते रहे।

२≡) जो प्रेमी चारपाईपर करवटें बदलनेमें बहुत जल्दी करते थे और कोई सहायता नहीं की जा सकी, उन्हें सीधा करके बांधनेमें रस्सी लगी।

१—)॥ जो प्रेमी बहुत दिन बाद मिले और मिलन आनन्दमें बेहोश हो जाते थे, उनके मुँहपर छिड़कनेके लिये गुलाब-जल खरीदा गया।

॥≈)॥ गलेसे गला मिलाकर जो प्रेमी बेहोश हो गये थे उन्हें छुड़ानेकी मजदूरीमें लगे।

११≡) जिन प्रेमियोंकी गर्दनें झुकाये झुकाये टेढ़ी पड़ गयी थीं उन्हें सीधा कराना पड़ा।

२१=) सदस्योंने जिन गन्दी गलियोंकी शिकायत की उनकी सफाई करायी गयी।

इस प्रकार खर्चका कुल टोटल ११४-)॥ हुआ। छपाई इत्यादिका खर्च इसमें नहीं जोड़ा गया, क्योंकि प्रेम-प्रेस सोसाइटीके ऊपर कृपा दृष्टि रखता है।

सोसाइटीको अनेक अन्य आवश्यक काय करने थे, परन्तु खर्चेके कम पड़ जानेके कारण इस वर्ष अन्य कार्य्योंमें हाथ लगाने का साहस नहीं हुआ।

आवश्यकताएँ

सोसाइटीकी आवश्यकताओंका जिक्र करनेसे पूरा पोथा बन सकता है, परन्तु हम अपना और आपका समय नष्ट नहीं करना चाहते। आपलोग कृपा बनाये रहें सोसाइटी अपना अस्तित्व बनाये रहेगी।

अन्तमें

हम सभी प्रेम रिसर्च सोसाइटी' से सहानुभूति रखनेवाले सज्जनोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। परोक्ष या अपरोक्ष, किसी रूपमें भी जिन्होंने सोसाइटीके प्रति प्रेम प्रकट किया है सोसाइटी उनकी है और उनकी बनी रहेगी। बोलो मन्मथ महाराजकी जय।

मन्त्री—प्रेम रिसर्च सोसाइटी।

कुछ सम्मतियाँ

—मैं इस सोसाइटीको अच्छी तरह जानता हूँ। जनताकी इस प्रकार सेवा करनेके लिये बधाई।

पं० गीता किशोर शास्त्री, क० ख० ग०।

—'मैंने 'सोसाइटी' में एक निरीक्षककी हैसियतसे प्रवेश किया था, परन्तु कार्य देखकर इतनी प्रसन्नता हुई कि सदस्य होकर बाहर निकला।'

श्री सीताराम धनुषधारी, डी० एल० लन्दन

—"सोसाइटीका हिसाब जाँचकर ही मैंने हस्ताक्षर किये हैं! भूल निकालने वालेको ५०००) इनाम।'

श्री रामायण प्रसाद पुरोहित,
'हिसाब-परीक्षक'

प्रेम-प्राइमर

भाइयों और भौजाइयो ! बादलों की गड़गड़ाहटके दिन तो अभी दूर हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि इस फागुनके महीनेमें भी आप लोगोंके मन-मयूर नाचे बिना न रहेंगे, जब आप लोगोंके कानोंमें यह शुभ-संवाद आ टपकेगा कि सचित्र प्रेम-प्राइमर अब प्रकाशित हो गयी है। आप लोग आतुरता की आँधीसे औंधे मुँह होकर कहीं यह प्रश्न न कर बैठें कि छप गई है, तो कहाँ है, इसलिये सबसे पहले उसके सम्बन्धमें मैं कुछ कहूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि मैं दूसरे कामोंमें न फँस जाता तो प्राइमर का प्रकाशन होलीसे पहले भी हो सकता था, लेकिन यहाँ पर हम लोगोंको यह न भूल जाना चाहिये कि प्राइमरके प्रकाशनमें रुकावट डालनेवाली बाधाओं पर विजय प्राप्त हुई, यही बहुत है। कहनेसे क्या, आप लोग स्वयं सोचिये कि प्रत्येक कामका प्रारम्भ एक तो ऐसे ही कठिन होता है, दूसरे ऐसे कार्योंकी कठिनाइयोंका कहना ही व्यर्थ है, जिनके विषयमें जनताके भूत भी उदासीन हों।

मैंने अपना काम समयसे कुछ ही पिछड़कर पूरा कर लिया था, लेकिन आप लोग यह जानकर आश्चर्यसे अरब सागरमें डूब जायँगे और दुख के दर्रेमें समा जायँगे कि मैंने जिस प्रकाशकसे प्राइमरके प्रकाशन की चर्चा की, उसीने इसे अश्लील बताकर असमर्थता प्रकट की। कहना न चाहिये, परन्तु कहना पड़ रहा है कि यदि मेरा मन होलीके अवसर पर ही इसे प्रकाशित करनेके लिये रस्सियाँ न तुड़ाता तो कदाचित् प्राइमर

आगामी फागुनसे पहले आप लोगोंके करकमलोंमें कुतुबमीनारसे भी सर पटकनेसे न पहुँचती। हाँ, यह सम्भव था कि यदि देरसे प्रकाशित होती तो प्रकाशन सुन्दर होता और कदाचित् किसी प्रख्यात प्रकाशक द्वारा होता, लेकिन केवल सुन्दरताके लिये यदि हम आगे की कार्यवाही स्थगित रखें तो यह कहाँ की बुद्धिमानी है ?

देशका दुर्भाग्य ही तो है कि आज देशके कोने-कोनेमें यह विचार-धारा बह रही है कि प्रेमके लिये ट्रेनिङ्ग की आवश्यकता ही क्या है ? भला आपही लोग बतायें कि इस विचार-धारासे देश बहेगा या रहेगा ? यूनिवर्सिटी और कालेजों की शिक्षासे सभी को प्रेम हो रहा है, लेकिन क्या आप लोग समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि देशके कितने बेकार युवक पेटकी ज्वालासे ग्वाला के कामकी कौन कहे, मोची तकका कार्य कर रहे हैं ? कितने शोककी बात है कि सुधार तो दूर रहा, स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि कुछ पेड़ोंसे लटक कर और कुछ जहर गटक कर प्राण खो रहे हैं। मेरी बुद्धि तुच्छ है, लेकिन फिर भी मैं सोचता हूँ कि यदि इन्हें प्रेम-पाठशालामें शिक्षा मिली होती तो कबकी समस्या हल हो गयी होती। आफिसोंके आगे (नो-वेकन्सी' के) साइन-बोर्ड दिखाई न पड़ते और आफिसोंको उनका खर्च भी न देना पड़ता। बेकार युवक कामके लिये हाय तोबा न मचाते और जिसके यहाँ सींग समाते, हींग खाकर भी पेट पालता। आफिसों में जगह न थी तो न सही, सड़कोंपर जगह की क्या कमी है ? कतारों की कतारें खड़ी होतीं और सभी 'छ' के लिये छज्जा, जैसा कि प्राइमरमें चित्र है, देखा करते। और नहीं तो पार्कोंमें तो काफी स्थान था ही, घास पर लेटे-लेटे प्रेम पहाड़ा का ही पाठ पढ़ा जाता।

मेरे एक मित्र बड़े दूरदर्शी हैं उन्होंने तो एक दिन यहाँ तक अनुमान लगाया था कि यदि कुछ भी फरहादके दर्जे तक पहुँचते तो आज सभी पहाड़ोंमें खुदाई प्रारम्भ हो गयी होती और सबसे बड़ा एक काम यह पूरा होता कि सड़कों और रेलवे लाइनोंपर जो पत्थर छोड़े जाते हैं उनके लिये अधिकारियोंको खुदाईका पैसा बिलकुल नहीं देना पड़ता। प्रेमी सनकमें खोदते और अधिकारी ढोनेवालोंको कामपर लगा देते। और कहीं ऐसी भी समस्याएँ आने लगतीं कि 'जो दिल्लीसे हवड़ा तक रेलवे लाइन पाट देगा' उसी फरहादको शीरीं मिलेगी, तब तो कहना ही क्या था ? आज नगरोंके अन्दर भी ट्राम-लाइनोंके स्थान पर रेलवे लाइनें होतीं।

यहाँपर एक कठिनाई और याद आ गयी और उसकी चर्चा भी असंगत न होगी। बात यह है कि हमने प्राइमरके चित्रोंके बनानेका कार्य 'प्रेमप्रचुर' जी चित्रकारको दिया था और वह भी इसलिये कि 'प्रेम-प्रेस' जहाँसे प्राइमर प्रकाशित हुई है, उसके ये ही सब काम करते हैं। लेकिन जो समय इन्होंने चित्रोंके तैयार करनेमें लगाया है उसे जब मैं सोचता हूँ तो प्राइमरके विलम्बसे प्रकाशित होनेके लिये ये सबसे अधिक दोषी ठहरते हैं। ब्लाकोंके पैसे मिलेंगे, इसका तो इन्हें विश्वास ही था, लेकिन सर्वप्रथम प्राइमरसे लाभ उठानेकी युक्ति निकाल कर इन्होंने एक ही ढेलेसे दो शिकार मारने चाहे। एक-एक अक्षरके लिये कानून बघारते रहे। उदाहरणार्थ मैंने 'च' के लिये चप्पलका चित्र बनवाया था, तो इनको चुपचाप बनाना चाहिये था। लेकिन काम रोकके ये दो दिन तक मुझे इसलिये खोजते रहे कि प्रेम-प्राइमरमें 'चप्पल' के चित्र की क्या आवश्यकता ? फिर भी मुझे सन्तोष है मैंने जो कुछ इन्हें समझाया है वही उन गँवारोंकी बातका उत्तर

है, जो यह कहते हैं कि प्रेमके लिये शिक्षाकी क्या आवश्यकता है? आपलोग सोचें कि गँवार-प्रेमियोंके लिये 'चप्पल' की आवश्यकता सरे बाजार आ पड़ती है कि नहीं?

खैर! कुछ भी हो, प्राइमरको आज प्रकाशित देखकर कौन प्रसन्न न होगा? मुझे स्वयं इतनी प्रसन्नता है कि विलम्ब करने पर हृदयमें सन्तोषका अनुभव कर रहा हूँ। मैं इस अवसर पर 'प्रेम प्रचुर' जीके अपराधको क्षमाकर उन्हें हृदयसे धन्यवाद देता हूँ और साथ ही कामके प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

लेकिन भाइयों! जागो। कुम्भकर्णी निद्राका जमाना अब लद गया। कितने खेदकी बात है कि आज देशमें प्रेमकी शिक्षाके लिये कोई प्राइमरी पाठशाला भी नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि आप लोग मेरी इसी प्राइमरको सब कुछ समझ लें! आप देखते हैं, आज जितनी पाठशालाएँ है उनमें उतनी तरहकी प्राइमरें हैं। आप लोग अन्य प्राइमरें तैयार कीजिये। पाठशालाएँ खोलनेके लिये और कुछ काम कीजिये। यदि अधिक न हो सके तो बड़े-बड़े नगरोंके अन्दर इस प्रकारके प्रेम-महाविद्यालय तो खुल ही जाने चाहिये। समय हमसे तकाजा करता है कि हम कुछ ही वर्षोंके अन्दर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की भाँति प्रेम-साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्था की स्थापना करें और गौरवसे सर उठाकर यह कह सकें कि हमारे देशमें 'प्रेम-विशारद' और 'प्रेम-रत्न' जैसी उपाधियों वाले व्यक्तियोंकी संख्या कम नहीं है।

आप लोग पुनः यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि हमने पं० गीता किशोरजीको इस बातके लिये राजी कर लिया है कि वे दूसरी बार कौंसिल-भवनमें चेष्टा करके जायँ और वहाँ इस बात

का प्रस्ताव रखें कि प्रेमकी शिक्षा देशके लिये अनिवार्य शिक्षा हो। मुझे तो यहाँ तक आशा है कि ईश्वर हमारे कार्यको सफल करेगा और वह दिन दूर नहीं है जब कि वोटर लोग किसीको वोट देनेके पहले अपने इस कर्त्तव्य पर भी विचार करेंगे कि 'प्रेम-शिक्षा' के हितके विचारसे हम अपना वोट किसे दें। आओ, जगन्नियन्ता परमेश्वरसे प्रार्थना करें कि वह देशको बुद्धि दे और देशका बच्चा-बच्चा सड़कों पर तड़पती हुई चीजें गाता निकले, चाहे अर्थ न समझता हो।

मैं तो इस समय डी० एल० (Doctor of l‹ ve) होने विदेश जा रहा हूँ लेकिन आशा है कि आगामी फागुन तक आ जाऊँगा। आप लोग कार्यमें शिथिलता न आने दें यही प्रार्थना है।

एक शुभ-संवाद और है। मैंने 'प्रेम-प्रहेलिका', 'प्रेम-प्रतोलिका' 'प्रेम-प्रसूतिका', 'प्रेम-प्रतीक्षा' तथा 'प्रेम-प्रहार' आदि-आदि लगभग आधा दर्जन पुस्तकें छपनेके लिये और दे दी हैं। आगामी होलीके अवसर पर आप लोग इन्हें पाकर अवश्य इस साहित्यको सर्व सम्पन्न समझेंगे।

प्राइमरकी रूप रेखा

वर्ण-मालाके कतिपय अक्षरोंके चित्रोंका आभास नीचे दिया जा रहा है। आप लोग 'क' माने कबूतर, 'ख' माने खरगोशकी भाँति पढ़नेके लिये तैयार हो जायँ।

वर्णमाला		चित्र-परिचय
अ	=	१—अनंग, २—अभिसारिका
आ	=	आभूषण
उ	=	उपाधान
क	=	१—कलाई, २—कटार
ख	=	खञ्जन
ग	=	गलबाहीं
ज	=	जम्फर
झ	=	झरोखा
ट	=	१—टका, २—टट्टू
त	=	तलवा
न	=	नमकका ढेला
ल	=	लटकन
ह	=	हनु

प्राइमरकी दूसरी ओर टाइटिल-पेजपर एक प्रेम-प्रार्थना भी है, जिसे प्राइमर समाप्त होते ही कण्ठस्थ कर लेना चाहिये क्योंकि आगे आवश्यकता पड़ेगी। प्रेम-प्रार्थना कवि तुलसीदास जीकी है. जो कि उन्होंने उस समय लिखी थी जब वे 'रामगुलाम' नहीं, बाम-गुलाम थे। अपने स्थानीय बुकसेलरोंसे प्राइमर माँगिये तथा नीचेके पते पर पत्र-व्यवहार करें।

प्रकाशक—

प्रेम-प्राइमर

१६ नं० प्रेम-प्रतोली, प्रेमपुर (पी० पी०)

प्रेमकी-चोट

बुजुर्गोंके कथनानुसार मानव जीवनमें एक अवस्था ऐसी भी आती है, जिसे 'गधा-पचीसी' कहते हैं। यह अवस्था १६ से २५ वर्ष तककी उम्रमें मानी जाती है, और चूंकि इस अवस्थामें मनुष्यमें अनुभवकी कमी रहती है, अतः आवेशमें बुरे कामोंको भी भला समझकर, बिना सोचे समझे कर गुजरता है। मनुष्य सोना देकर चाँदी खरीदनेकी 'वज्र मूर्खता' इसी अवस्थामें करता है। लेकिन मूर्खताका तो इतिहास हम लिखने नहीं बैठे। हम तो सिर्फ प्रेमकी चोटकी आप बीती सुनाकर साँस ले लेंगे।

जिस प्रकार ग्राहक और मौतका क्या ठिकाना कि कब आ जाय उसी प्रकार यों तो प्रेमकी चोट चोट ही है, न जाने कब लग जाय, परन्तु बड़े-बड़े अनुभवी प्रेम-विशारदोंका कहना है कि प्रेमकी चोट ज्यादहतर इसी 'गधा-पचीसी' की ही उम्रमें लगती है। निशाना ठीक न बैठा तब तो ठीक, परन्तु यदि बैठ गया, तो फिर यह चोट जन्म भर भूलती नहीं।

वास्तवमें यदि ध्यानसे देखा जाय तो सोलह-सत्रह वर्षकी अवस्थातक हमलोग कम-से-कम मैट्रिक तककी परीक्षामें पास हो जाते हैं, परन्तु कैसे दुःखका विषय है कि मैट्रिक तककी पढ़ाईमें अभीतक इस चोटसे बचानेवाली शिक्षाको स्कूलके पाठ्यविषयोंमें जगह ही नहीं मिली! जरा गौर करनेकी बात है, जो विषय खास होना चाहिये था, उसे अभीतक वैकल्पिक विषयकी हैसियतसे भी स्थान नहीं मिला। विद्यार्थीको साइन्स, ड्राइङ्ग, संस्कृत,

परशियन आदि-आदि विषयोंमेंसे कोई न कोई विषय अवश्य लेना पड़ेगा और यदि कोई धार्मिक हाईस्कूल हुआ, तो लड़केको धर्म-शिक्षाके क्लासमें भी मजबूरन हाजिरी देनी पड़ेगी, परन्तु प्रेम चोटसे बचानेवाली शिक्षाके विषयमें कोई कोर्स नियुक्त करनेमें कदाचित् अधिकारियोंको भावी महायुद्धके नतीजेका अनुभव होने लगता है। परिणाम यह होता है कि स्कूली-जीवन खत्म होते ही नवयुवकोंको 'गधा-पचीसी' की अवस्थामें प्रवेश तो करना ही पड़ता है, लेकिन गँवारकी हैसियतसे, अतः प्रेमकी वह चोट लगती है कि कभी-कभी मेरी ही भाँति अस्पताल जाने की नौबत आ पड़ती है। सारी जिन्दगी सोहराइये, दर्द दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता है।

जुग-जुग जियें हमारे वह नेता जिन्होंने "शिवा-बावनी" को सम्मेलनके कोर्ससे निकाल बाहर करनेका प्रश्न उठाया है। यदि ऐसे ही दूसरे भी बड़े-बड़े नेता ध्यान दें और इस तरहका अनुपयोगी साहित्य हटाकर, उसके स्थान पर हमारे अभीष्ट विषयक साहित्यको स्थान दें, तो हमारे कितने ही भाइयोंका जीवन सुखमय हो सकता है। सम्मेलन-छात्रोंके सौभाग्यमें ही यह दुर्घटना होनेवाली थी, इसीलिये मौजूदा साहित्य शिक्षाके वातावरणसे कुछ पहले शिक्षित हो जानेके दुर्भाग्यसे हमारे ऊपर जो बीती, यह। उक्त श्रीगणेशके बाद उसी करुण कहानीका एक छोटा-सा विवरण पेश कर देनेका लोभ अब हम नहीं सँभाल सकते! इस प्रेम—चोटसे रक्षा करनेवाली शिक्षाकी कमीके कारण ही मैंने जैसी गहरी चोट खायी है, आपलोग उसका गम्भीरता-पूर्वक विचार करें।

(१)

कानपुरसे ११ मील पूर्व उन्नाव नामका रेलवे स्टेशन और

कस्बा है। यहाँ एक कपड़ेके मशहूर दूकानदार हैं, चुन्नीलाल। आपलोग कहेंगे कि एक चुन्नीलाल ही क्या, मुन्नीलाल, टुन्नीलाल और धुन्नीलाल वगैरह क्या कुछ कम मशहूर व्यापारी हैं! हाँ, वे तो इनसे भी बड़े हैं, परन्तु इस समय मुझे कपड़ा नहीं खरीदना है, अतः सबकी चर्चा छोड़कर इन चुन्नीलालकी ही चर्चा मुझे करनी पड़ रही है—और वह भी इसलिये कि मेरी कहानीके कुल कर्ताधर्ता ये ही हैं।

चुन्नीलालजीसे मेरा रिश्ता केवल इस कहानीके ही नाते नहीं है, असलमें वे मेरे एक रिश्तेदार भी हैं। बात यह है कि कानपुरके एक हाई स्कूलसे मैट्रिककी परीक्षा समाप्त कर लेनेके उपरान्त छुट्टियोंमें मुझे कुछ अर्सेके लिये अपने घर, देहात चले जाना पड़ा। परन्तु आपलोग सोच सकते हैं, कि शहरी लोगोंका देहात में कब तक मन लगेगा? और फिर उस अवस्थामें, जब कि शादीकी चर्चा भी न हुई हो, और उम्र हो पूरी 'गधा-पचीसी' की! आठ दिन किसी प्रकार बीत जानेके बाद मेरे मनमें देहातसे भाग जानेकी इच्छा प्रबल हो उठी। बुद्धू घर वालोंपर पढ़ाईका रोब जम ही चुका था, इसलिये कहीं एकान्तमें कुलका यश बढ़ानेवाली साधनाके प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति प्राप्त करके, मैं उन्नाव जैसे छोटे कस्बेमें किरायेकी एक छोटी-सी कोठरीमें जा बसा।

दीवालीका दिन था। सायंकालके समय, लोग कस्बेकी रोशनी और जलसा देखनेके लिये निकल रहे थे। मुझे भी मुनासिब समझ पड़ा और पोशाक पहन कर घरसे निकला, परन्तु सौभाग्य कहिये या दुर्भाग्य, चुन्नीलालजी कोतवालीकी तरफ जानेवाली सड़कपर वैसे ही मिल गये, जैसे वे आज इस कहानी के बीचमें आ टपके हैं। कुशल समाचार पूछनेके बाद जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं यहाँ भी किरायेके मकानमें ही गुजर करता

हूँ तो उन्होंने अपने घर रहनेकी बेहद जिद शुरू कर दी। उस दिन रोशनी और जल्सोंकी धूममें फुरसत ही न मिली, पर दूसरे ही दिन मुझे बिना किसी उज्रके उनके घर चला जाना पड़ा। रिश्तेका परिचय इसी समय दे देना उचित जान पड़ता है, अतः मुझे कहना पड़ता है कि चुन्नीलालजी एक दूरके रिश्तेसे मेरे ससुर होते हैं।

दूरके रिश्तेदारोंको जब नजदीक रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है तब उन दोनोंके दिल भी बहुधा एकदम नजदीक हो जाते हैं! कदाचित् यही कारण था कि एक महीनेके भीतर ही हम और चुन्नीलालजी दामाद और ससुरका रिश्ता छोड़कर दोस्तीकी गांठ जोड़ बैठे। यद्यपि उम्रमें वे दो चार साल बड़े थे, लेकिन दोस्तीने हम दोनोंके बीच ऐसी राह निकाल दी कि हम दोनोंमें घुल घुलकर सभी विषयोंकी चर्चा होने लगी और वह भी सभी प्रकारसे सभी समय।

(२)

शामको अन्धेरेमें जब मुझे उनकी नाक भी नहीं दीख पड़ रही थी, खुली खिड़कीसे जाड़ेकी ठण्ढी हवा मुझे छूती हुई निकल गई। छातीसे धड़कनका गीत सचमुच मैं नहीं सुन रहा था, यह बात तो नहीं थी, लेकिन आश्चर्य है कि मुझसे कहीं अच्छे गीतका एक-एक स्वर चुन्नीलालजी अपने हृदयपर बैठा कर एक कविता कर ही तो बैठे? उनकी शाल कन्धेसे पैरों तक झूल रही थी और जो जगह खुली पाकर हवा कोंच गयी थी उसकी प्रेरणासे सजग होकर पर-दुःख-कातर चुन्नीलालजीने कहा—'चलो, न हो तो आज तुम्हारी उनसे भेंट करा दूँ।'

'उनसे' चुन्नीलालजीका जो मतलब था मेरा भी वही मतलब था, यह अन्दाज परम गँवारोंके सिवा दूसरा न लगा सकेगा। मजा यह कि खुद चुन्नीलालजीका भी यही ख्याल था और इसे मैं

अनुभवके बाद अब दोष नहीं मानता, क्योंकि मैं जान गया हूँ कि 'गधा-पचीसी' में सब कुछ ठीक है, ससुरके रजिस्टरमें उनका नाम लिखा रहने पर भी मैंने उन्हें एक दरजा ऊँचेके मैत्रीका प्रमोशन दे दिया था। अब सुनसान सड़कपर वे आगे और मैं पीछे-पीछे चला। ईश्वरकी इसे कृपा ही समझिये कि रास्तेमें कहीं कोई छायावादी कवि नहीं मिला, नहीं तो वह हमलोगोंको अनन्तकी ओर जानेवाले महापुरुष समझ बैठता, 'लेकिन इसी तरह हमलोग अभी और कितनी दूर चलेंगे'—मेरे यह पूछते ही चुन्नीलालजीने तपाकसे कहा—'बस, आ गये। वही सामने।'

'वही सामने' का शब्द सुनते ही मुझे जैसे कोई ढकेलने लगा! पाँवकी रफ्तार बढ़ी, तो इस समय मैं आगे और चुन्नीलालजी पीछे हो गये! उस समय मुझे तो खुशी हुई थी, परन्तु इस समय आप लोगोंको भी यह जानकर खुशी होगी कि दरवाजा बाहरसे नहीं, भीतरसे बन्द था। ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़नेकी अपेक्षा पत्थर खोदकर पानी निकालनेकी अपने रामकी आदत नहीं। सम्भव है कि इक्कीसवीं सदीमें देहाती कुओंपर रस्सीकी रगड़से उभरे हुए गड्ढे ही अकारण, यश-लिप्सी ऐतिहासिकोंके मनो-विनोद और ज्ञान-गौरवका कारण बन जायँ, परन्तु इससे क्या? हम तो अपने मकसद तक पहुंच गये हैं और अब मतलबकी बारी है।

चुन्नीलालजीने कुण्डी खटखटायी। बोझसे दबे मजदूरके कंठको भी मात करनेवाली एक मोटी स्वर लहरीका उत्तर हम दोनोंके चार कानोंके परदोंपर झनझना उठा। उस समय चुन्नी-लालजीने जो कुछ कहा था उसे कह करके हम शृंगारमें वीभत्स नहीं मिलाना चाहते हैं, और यही कारण है कि हम दोनोंको वहींपर पाँच मिनटतक एकको दूसरेका चेहरा देखना पड़ा था।

मेरा मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा था। चारों तरफ अन्धेरे में कुछ सूझ न पड़ रहा था। दरवाजा कब खुला, सचमुच इसका कुछ भी अन्दाज मुझे न मिलता, यदि चाँदनीकी रोशनी मेरी आँखों में झिलमिलाहट पैदा न कर देती। मैं हक्का बक्का होकर यह सोचने लगा कि आखिर अमावसकी रातमें यह चाँद इस घरमें कैसे सोता रहा! यही नहीं, अभी न जाने क्या-क्या सोचता लेकिन चुन्नीलालजीके मार्मिक वार्तालापसे मेरी विचार-लड़ी टूट गयी। धीमे स्वरमें केवल इतना ही सुनाई पड़ा—'अन्दर आइये।'

अब फिर चुन्नीलालजी आगे और मैं पीछे था। तीन दरवाजे पार करनेके बाद आँगनमें दो पड़ी हुई चारपाइयोंपर बैठनेकी इजाजत लेनेकी फिर कोई जरूरत नहीं महसूस हुई। एक तो रात दूसरे पराया घर, ये बात ऐसी थीं कि मेरे दिमागमें सनसनाहट सरक रही थी, कलेजा धकपक-धकपक कर रहा था। लेकिन चुन्नलालजी का दूसरा ही हाल था। वे गर्दन घुमाकर, जैसे छप्पर और दीवाल आपसमें वार्तालाप करते हैं, अपनी कविता पढ़ रहे थे।

अब तो आपलोग समझ ही गय होंगे कि हमलोग कहाँ और किसके यहाँ हैं। यदि अब भी नहीं समझे तो हमें यह मान लेने में कोई उज्र नहीं कि आप लोगोंने जीवन-बीमाके साथ-साथ समझ का भी बीमा करा लिया है। खैर, जो हो, वे बताशा तोड़ती हुई दो कटोरा दूध, पान-जरदा तथा बीतचीत जमानेकी और भी जरूरी चीजें लेकर हाजिर हुई और चुन्नीलालजीसे कोमल स्वरमें बोलीं—'चाचा दूध ले लीजिये।'

भगवान जाने कैसे आया, परन्तु इस समय एक कटोरा दूध मेरे हाथ में भी था। चोट खाये हुये साँपकी तरह मेरी आँखें तो उनसे लिपट-लिपट कर बारबार बेबसी जाहिर करने लगी और मैं

घूँट घूँट करके दूध पी रहा था। उधर चाचा साहबने कटोरा भर का सारा दूध एक ही साँसमें वैसे ही गलेके नीचे उतार दिया, जैसे कोई एक लोटा पानी झटसे किसी नालीमें उड़ेल दे! अब वे पान खा रहे थे। रस ओठोंपर आया तो पीक थूककर मेरी ओर इशारा करते हुये उन्होंने कहा—'मुन्नी! इन्हें जानती हो? हमारे सत्ती फूफाकी नातिन इन्हींके बड़े भाईको ब्याही है।'

मुन्नीने गर्दन घुमाकर कहा—'तब तो ये हमारे बहनोई हुए न चाचा?'

बल मिला तो मैं कुनकुना उठा। गफलत करनेसे गुड़ गोबर हो सकता था। अतः आव देखा न ताव, मैंने झटसे कह दिया—'जिसकी अभी शादी ही नहीं हुई है, वह किसका दामाद और किसका बहनोई!'

—"तब फिर यहाँ आये क्यों हैं?"

—"झख मारने। गाँवकी पञ्चायतमें जब फैसला न हो तो कोई जिलेकी अदालतमें न आयेगा, तो कहाँ जायगा?"

—"तो आप दरख्वास्त पेश करने आये हैं?"

—"हाँ, और चुन्नीलालजीकी सिफारिस लेकर।"

—"अच्छा, तब विचार किया जायगा, परन्तु देर लगेगी। महीने दो महीने धीरज धरना होगा।"

—"सो तो बचपनसे धीरजके बलपर ही इतना बड़ा हुआ हूँ।'

बस, इसके आगे जैसे किसीने मेरी जबानको रोक लिया। कण्ठ गुदगुदा उठा।

(३)

ज्वारके कटे भुट्टेकी तरह उस दिनके बाद मैं लगातार तीन-चार दिनतक चारपाई पर पड़ा-पड़ा उसी गङ्गा-जमुनीका रूप-लावण्य देखता रहा। चाँदके उदयसे सागरकी तरह मेरे हृदयका

उफान भी बढ़ता गया। एक दिन रातको १२ बजेके बाद, जब कुत्ते भी तीर्थ यात्राकी गठरी बने पड़े थे और सभी घरोंके दरवाजे बन्द हो चुके थे, तब अपने उछलते दिलको सँभालकर दबे-पाँव मैं उनके घरकी तरफ लपका। रास्ते भर उन्हींकी ज्योतिपर आँख गड़ाये रहनेके कारण मैंने दायें बायें आगे पीछेका कोई दृश्य नहीं देखा। अतः रास्तेकी अनेक आवश्यक एवं आकर्षक घटनाओंका विवरण देनेमें असमर्थ हूँ। फिर हम आप, सभीके जीवनमें ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं।

खैर! जैसे-तैसे राहोंकी चकरगिन्नी काटता उनके दरवाजेपर जा पहुँचा। क्षण भर श्रद्धा और लज्जामिश्रित आँखोंसे बन्द दरवाजेको देखता रहा। फिर दराजसे झाँकने लगा। किन्तु भीतर भी ऐसा अन्धकार था कि कुछ दिखाई नहीं पड़ा। ध्यान आया कि वे अवश्य ही गहरी नींदमें होंगी। इस समय यदि उन्हें अपने आनेकी सूचना न देता तो मैं कैसा अपराधी होता, इसका फैसला आपलोग ताजीरात हिन्द देखकर करें, ताकि वक्त जरूरत पर काम आये और सनद रहे।

(४)

मन उछल रहा था। धड़कन बढ़ रही थी। दिमाग धीरे-धीरे बेहोश होता जा रहा था। जाड़ेमें पसीना चुहचुहा आया था। किन्तु मैंने मानसिक एवं शारीरिक, सभी कमजोरियों पर काबू पाया। सँभलकर, तनकर और जी कड़ाकर काँपते हाथोंसे कुण्डी हिलाई। लेकिन अफसोस! उनके स्थानपर न जाने पुरुष कहाँसे बोला—'कौन है? आता हूँ। मैं अपना सारा हौसला वहीं छोड़कर उल्टे मुँह भागा!

अभी दस कदम भी न भाग पाया था कि बीस हाथकी दूरीपर एक लाल-लाल पगड़ीवाला दिखाई पड़ा! गनीमत हुई कि

जोशमें दूसरी ओर मुड़नेका रास्ता मिला। मैं उधर ही पत्ता-छू भागा, परन्तु दुर्भाग्य जब फड़फड़ाता है, तो शायद कुत्तोंके रूपमें भी सामने आता है। ऐसी भुक्क-भों, भुक्क-भों शुरू हुई कि पनाहके लिये मैने दूसरा रुख लिया ही था कि एक सनसनाता हुआ ईंटका टुकड़ा आया और खोपड़ीमें ठोकर लगाकर स्वयं भी गिरा और मुझे भी मुँहके बल गिरा गया!

ईंटका टुकड़ा घरवालेने तानकर मारा था कि पुलिसवालेने मारा था, इसका मुझे पता नहीं है। परन्तु इतना मैं जरूर कहूँगा कि उनके खान्दानका कोई शब्द-बेधी बाण चलानेवाले पृथ्वीराज की सेनामें पहले जरूर रहा होगा, अन्यथा अन्धेरेमें ऐसा अचूक निशाना लगा लेना आसान काम न था। मैं उस समय तो बेहोश हो गया, परन्तु होश आनेपर अस्पतालमें था।

प्रेमकी यह चोट कितने दिनोंमें अच्छी हुई, कैसे मुकद्मा चला और कैसे मैंने छुट्टी पाई, इन बातोंसे किसीका कोई मतलब नहीं है। हाँ, तबसे जब कोई 'प्रेमकी-चोट' का नाम लेता है, तो मेरे दोनों हाथ सिरके ऊपर चले जाते हैं। मैं सिरकी दोनों हाथों से रक्षा करता हुआ सोचने लगता हूँ कहीं कोई ईंट तो नहीं आ रही है!

●

मेरी प्रेमपुर-परिक्रमा

कब गया, कैसे गया, कितना किराया लगा था, पासपोर्ट लेना पड़ा था कि नहीं, आदि बातें सब सोचने पर भी याद नहीं आतीं। केवल इतना ही याद है कि घूमा और खूब घूमा। जो कुछ वहाँ देखा सुना, उसकी धुँधली याद अब भी है और रहेगी। वहाँकी विचित्र बातें, वहाँके निवासियोंका विचित्र जीवन मैं क्या, आप भी जाते तो कभी न भूलते।

एक मियाँ साहब थे। सिरपर ऊटपटांग पगड़ी लपेटे भागे जा रहे थे। पगड़ीका एक छोर जमीन भी बटोरने लगा था, किन्तु आप बिलकुल लापरवाह थे। जब मेरे पाससे गुजरने लगे तो मैंने कहा—'जरा पगड़ी तो सँभाल लीजिये। ऐसी जल्दी काहेकी है ?

—'पगड़ी होती तो सँभाल न लेता ! यह तो कफन है। इसे तो बरबाद ही होना है।'

'कफन ! यह आप क्या कह रहे हैं ?'

'हाँ, हाँ, ठीक कह रहा हूँ। यह कफन ही है। मैं 'सिरसे कफ़न को बाँधे कातिलको ढूँढ़ता हूँ।'

× × ×

एक गलीके सिरेपर बड़े मोटे अक्षरोंमें लिखा था 'प्रेम गली'। मैंने देखा तो एक मोटे सज्जन गलीके भीतर जाना चाहते थे, परन्तु गली इतनी तंग थी कि आप तिरछे होनेपर दोंनों दीवालोंके बीचमें दब रहे थे। ऐसा फँसे थे कि अब न इधर ही आ सकते थे

और न उधर ही जा सकते थे। मुझे देखकर बड़ी प्रसन्नतासे बोले—'जरा मुझे भीतरकी तरफ ढकेल दीजिये।'

—'जब आप सिरेमें ही फँस गये हैं, तो और भीतर जाने पर आपका क्या हाल होगा? जल्दी निकल आइये, नहीं तो कहीं आत्महत्या करनेके सम्बन्धमें आप गिरफ्तार न कर लिये जायँ।

—'जिस गलीमें घुसनेके लिये कुटुम्ब छोड़ दिया है, उसके लिये अब मुझे प्राण छोड़नेमें कोई आपत्ति न होगी। भूल तो हो ही गयी।'

—'कैसी भूल?'

'यही कि 'प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं' मुझे मालूम था, परन्तु मुझे यह नहीं मालूम था कि एक व्यक्ति दो के बराबरका मोटा हो, तो भी वह इस गलीमें नहीं जा सकता।'

मुझे हँसी आ गयी। फिर भी मैंने कहा—'आप स्वयं चेष्टा कीजिये। निराश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। धीरे-धीरे पहुँच जाइयेगा।'

× × ×

एक साहब सामनेसे रोते हुये चले आ रहे थे। मैंने रोककर पूछा—'क्या हुआ?'

—'भाई, कुछ न पूछो। एक जगह प्रेम परिचय करने गया था। वहाँसे लौटकर चौराहेपर आया, तो पानी बरसने लगा। मुझे याद आया कि शायद छाता वहीं भूल आया हूँ। लौटकर गया, परन्तु छाता लेकर जब लौटा हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि इस बार दिल वहीं छोड़ आया हूँ। छाता तो ले आया, परन्तु अब दिल लेने कौनसा मुँह लेकर जाऊँ? और फिर अब वह लौटकर आयेगा भी तो नहीं।'

—'खैर मत रोइये। किसी दूसरे समय जाकर ढङ्गके साथ बात चीत करके माँग लाइयेगा।'

× × ×

इसी समय बगलसे एक जत्था चिल्लाता हुआ आया,—'लड़ाई! लड़ाई!' मुझे मालूम हुआ, शायद कहीं लड़ाई होगी। तीतरोंकी लड़ाई देखनेका बचपनसे ही शौक था। एक साहबसे पूछा—'क्या तीतरोंकी लड़ाई होगी?'

—'यहाँ तीतरोंकी लड़ाई नहीं होती।

—तब किसकी?'

—'आँखोंकी।'

× × ×

आगे एक बहुत बड़ा तालाब था। अथाह भरा रहा होगा। एक सज्जन दौड़े दौड़े आये और छपाकसे पानीमें कूदकर ऐसे डूबे कि फिर निकले ही नहीं। एक वृद्ध महोदय आ रहे थे। मैंने उन्हें रोककर कहा 'अभी अभी एक आदमीने इसमें डुबकी लगायी है। काफी देर हो गयी, निकला ही नहीं! डूब गया या कोई बहुत बड़ा गोताखोर है?

—'ह-ह-ह-हा! वह तो निकल गया।'

—'किधरसे?'

—'पहले यह बताओ कि क्या तुम इस तालाबका नाम जानते हो?'

—'नहीं।'

—'इसका नाम प्रेमसागर है।'

—'प्रेमसागर! लल्लूलालजीने तो प्रेमसागर पुस्तक लिखी थी। यह तालाब कैसे?'

—'पुस्तक-उस्तक मैं कुछ नहीं जानता। यह प्रेमपुरका

प्रसिद्ध तालाब प्रेमसागर है। इसमें गिरकर वही निकल सकता है, जो एकदम डूब जाय।'

'अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अङ्ग' लाइन मेरे सामने ही एक साइनबोर्डपर लिखी थी। मैं पढ़कर चुप होगया।

× × ×

प्रेमपट्टीकी मोड़पर दो शरीर एक ही रस्सीमें बँधे मस्तीसे झूमते हुये चले जा रहे थे। एक महाशय जिनके कन्धेपर स्वयं-सेवकोंकी तरहका एक पट्टा 'प्रेम-प्रचारक-प्रेमपुर' लिखा पड़ा था, चले आ रहे थे। मैंने कहा—'महाशयजी! इस शहर में मैं नया आया हूं। ये दो शरीर एकही रस्सी में बंधे चले जा रहे हैं। यह किस लिये? क्यों इन्हें कोई अड़चन नहीं पड़ती? यदि एकको कहीं जाना हो और दूसरे को कहीं तो रस्सी इन्हें बाँधे हुए है, कैसे जायंगे?'

'अड़चन कैसी? यह रस्सी नहीं है। इसका नाम है प्रेम-डोर! प्रथम तो एक व्यक्ति कहीं जाना चाहे और दूसरा कहीं जाना चाहे, यही असम्भव है और फिर ईश्वर की इच्छा से ऐसा हो भी तो यह डोर बढ़ जाती है। यदि एक पाताल जाना चाहे, और दूसरा आकाश जाना चाहे, तब भी यह छोटी नहीं पड़ेगी।'

× × ×

सहसा अपने परिचित 'कदाचित' जी पंडित दिखाई पड़े। इतने बड़े पण्डित और ये आज भंगिन के साथ कैसे? मुझे प्रणाम करने का साहस न हुआ। उन्होंने ही कहा—'घूरते क्या हो? यह प्रेमपुर है। यहाँ जात पांतकी भीति निकालकर फेंक दी गई है।'

'जरा तिलक पोंछ डालिये और यह रुद्राक्षकी माला तो कुरतेके नीचे कर लीजिये।' मैंने कहा और आगे बढ़ा। वे मुस्कराते हुए चले गये।

× × ×

'प्रेम हाट' आ गया था। प्रेमका सौदा जोरों से बिक रहा था। कोई कह रहा था—'जल्दीसे हमारा सिर काट लो, लेकिन सौदा हमारे ही नाम करो। कोई कह रहा था—देख लो मैं राज्य छोड़ आया, अब तो विश्वास हुआ ? सौदा होनेमें देर क्यों है ?'

दूकानदार ने हँसते हुए कहा— 'ठीक है, मैं दो मनका एक मन करके सौदा भी तो तौल रहा हूँ।'

× × ×

प्रेमहाटमें ही एक जगह लखनऊकी रेवड़ियों जैसी टिकियाँ बिक रही थीं। "यह कौन चीज है ?" मैंने पूछा।

—"इसका नाम है "गम"। यह चूरन है। प्रेमपुरके लोगों का हाजमा यह चूरन ही ठीक कर सकता है आप भी इसका सेवन शुरू कीजिये, नहीं तो बीमार पड़ जाँयगे।

× × ×

बाजारके पास ही अस्पताल था। अस्पतालमें गया तो रोगियोंकी संख्या इतनी अधिक दिखायी पड़ी कि कोई कमरा खाली नहीं बचा था। पूछनेपर पता लगा इस मौसममें यहाँ बीमारी बड़े जोरोंसे रहती है।

प्रत्येक रोगीके सिरहाने एक-एक तख्ती लगी थी, जिसपर रोगीके रोगका नाम लिखा था। इन तख्तियोंके देखनेसे पता चला कि किसीके सीनेमें केवल दर्द ही हुआ करता है और किसीका दिल एकदम छलनी हो गया है। किसीको दिन-रात नींद नहीं आती थी। किसीको हिचकियाँ इतने जोरसे आती थीं कि

प्राण कब निकल जायँ, इसका डर बना ही रहता था। किसीकी देह पसीजा करती थी।

एक तरफसे डाक्टर साहब आये और उन्होंने एक रोगीसे कहा कि तुम्हारी दवा तो मृत्यु ही हो सकती है। रोगी चीत्कार मारकर बोला—'तब जल्दी कीजिये।'

डाक्टर साहबने कहा—'अभी तो घबराके कहते हो कि मर जायँगे।'

"मरके भी चैन न पाया, तो किधर जायेंगे।"

खैर, पानी गरम करके मैं दवा देता हूँ।

पास ही के एक रोगीने कहा—"डाक्टर साहब' आग न हो तो मेरा सीना दहक रहा है, इसीमें गरम कर लीजिये।

मैं घबराकर बाहर निकला। परन्तु जो कुछ देखा, सभी कुछ विचित्र था। सड़कों पर बत्तियोंके खम्भे शहरोंमें होते हैं। प्रेमपुरमें उतनी ही लम्बी-लम्बी मोमबत्तियाँ थीं। सैकड़ों आदमी नीचे खड़े पतिङ्गोंका जलना मरना देख रहे थे। लोगोंकी बोलचाल समझमें आती थी, परन्तु लोग बोलते कम थे। कटाक्षका ही प्रयोग अधिक होता था। दो परिचितोंकी भेंट होती थीं तो हाथ नहीं मिलाते थे, बल्कि गलेसे लिपट जाते थे। जलपान विचित्र ढङ्गसे होता था। दो प्रेमियोंमें एक-दूसरेके मुँहमें अपने हाथसे पानी टपका देता था और दूसरेको शरबतका मजा आ जाता था।

घूमते-घूमते थक गया था। विचार किया कि अब कल देखूँगा। इतनेमें ही एककी जुल्फोंमें मेरा पैर ऐसा फँसा कि धड़ामसे गिर पड़ा। आँखें खुलीं तो पण्डित गीताकिशोर शास्त्रीने कहा—'अरे, लगी तो नहीं। चारपाई खाली पड़ी थी, फिर बेंचपर क्यों सोये थे?'

प्रेमी-प्रेमिका कानफरेन्स

"कर्मक्षेत्रे प्रेमक्षेत्रे समवेता मिलनोत्सवा।
आशिकाः माशूकाश्चैव किमकुर्वत संजय।"
(प्रेम गीता से)

लीजिये, भाइयों, आपलोग सूचनाओं के 'अवश्य पधारियेगा' वाक्य की उपेक्षा कर इधर कामों में फँसे रहे और 'आल इण्डिया प्रेमी-प्रेमिका कानफरेन्स' का अधिवेशन हो कर समाप्त भी हो गया। उपस्थिति अच्छी रही। कार्यवाही भी सुन्दर हुई, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण सभापति का भाषण रहा। हम सभापति महोदय की इच्छानुसार भाषण प्रकाशित कर रहे हैं। मुँह खोलते ही उन्होंने जो कुछ कहा, इस प्रकार है:—

बुद्धाचरण:—

इश्कके मकतब का देखा है निराला अन्दाज,
उसको छुट्टी न मिली जिसको सब याद रहा ॥ १ ॥
देखकर बाजारे मुहब्बत में जरा सैर करो।
लोग क्या कहते हैं, क्या लेते हैं, क्या देते हैं ॥ २ ॥
दबगयी पानदानमें चुटकी, आग लग जाय पानखानेको ॥ ३ ॥
लब जलेबी, जकन लड्डू, कचौड़ी रुखसार।
चेहरये यार है कि खोंचा हलवाई का ॥ ४ ॥
बुरी है 'दाग' राहे उल्फत, खुदा न ले जाय ऐसे रास्ते ॥ ५ ॥

ओम् प्रेम-प्रेम-प्रेम !

मान्यवर स्वागत-कारिणी समितिके सभापति महोदय, उपस्थित तथा समयाभावसे अनुपस्थित प्रेमियों एवं प्रेमिकाओं जिस दिन सभापतिके इस आसनके लिये आप लोगोंका प्रार्थना पत्र मिला था, उस दिनसे आजतक क्या छोटे, क्या बड़े, सभी समाचारपत्रों, कानफरेन्स द्वारा बाँटे गये हैण्डबिलों एवं यत्र-तत्र चिपके हुए पोस्टरोंको मैंने धोतीके खूटसे चश्मा पोंछ-पोंछ कर पढ़ा है। जब सभी जगह सभापतिके लिये मुझे अपना ही नाम लिखा हुआ दिखाई पड़ा, तो भाषण भी लिखा और ठिठकते-ठिठकते किसी प्रकार यहाँ तक आ भी गया। परन्तु यदि आप लोग विश्वास करें, तो मैं अपने मनकी बात कहता हूँ, कि मेरी जानमें जान अब आयी है।

भाषण आरम्भ करनेसे पहले मुझे बार-बार यही शंका हो रही थी कि कहीं सभापति बनानेका भुलावा देकर आप लोग मुझे बेवकूफ बनानेका आयोजन तो नहीं कर रहे हैं।

वास्तवमें जिसे नाना भाँतिके प्रोपैगैण्डा करनेपर, इष्ट-मित्रों द्वारा समर्थन करानेपर और रुपयोंका प्रलोभन देनेपर भी कहीं सभापतिका आसन नसीब न हुआ हो उसे कोई कानफरेन्स गुपचुप सभापति चुनले तो यह उसके लिये आश्चर्यकी ही तो बात है। मैं आप लोगोंकी इस कृपाका जीवनभर ऋणी रहूँगा और इस समय भी असंख्य धन्यवाद देता हूँ।

मैं अपनेको सौभाग्यशाली मानता हूँ। मुझे हृदयमें इस आसन के पदका अनुभव भी होरहा है। परन्तु भाइयों! मैं इतना कहूँगा कि मैं इस योग्य कदापि नहीं था। औल इण्डिया प्रेमी-प्रेमिका कानफरेंस, आप जैसे प्रेमी तथा प्रेमिकागण और मुझ जैसा

सभापति, वास्तवमें ये बातें ऐसी हैं, जो हमारे और आपलोगोंके नाती पोतोंको वर्षों तक हँसानेके लिये काफी है। जिसे प्रेमके ककहरेका भी ज्ञान न हो, उसे 'अखण्ड प्रेम कीर्तन' में कृष्णका पद सौंपकर आप लोगोंने कौनसा उल्लू सीधा या कौवा टेढ़ा करना चाहा है, इसे मैं भाषण पढ़ते समय भी सोच रहा हूँ। कर्त्तव्यका पालन तो करना ही होगा, लेकिन बिना हिचकिचाहटके मै कहूँगा कि—

"यह है मीर मजलिस कि चीनीकी मूरत! टटोलो तो हेच और देखो तो सब कुछ। क्या "मेरे लिये बिलकुल ठीक है।"

खैर, भाइयों! प्रेम–संसारमें एक ऐसा पदार्थ है जिसके लिये चेष्टा करना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। परन्तु आजकल हम कौनसी चेष्टा कर रहे हैं, क्या आपलोग कभी इस प्रश्नपर भी विचार करते हैं। यदि यही हालत रही, तो संसारमें हमारा क्या हाल होगा? बन्धुओं! मुझे कहते हुए दुःख होता है, परन्तु कर्त्तव्यके नाते कहनाही पड़ता है कि हमलोग एक अकर्मण्य दलकी भाँति चुपचाप निराशाके ही दलदलमें पड़े हैं। जो लोग हमसे पीछे थे, वे आगे निकल कर आँखोंसे ओझल भी हो गये, परन्तु हम अब भी उसी दलदलमें निकल-पैठ रहे हैं। आप लोग बुरा भले ही मानें, परन्तु वास्तवमें आप लोग मुझे देहाती बैलगाड़ी जँच रहे हैं, जिसका पता ही नहीं चलता कि आगे जा रही है या पीछे।

कितने आश्चर्यका विचार है कि सुधारके इस युगमें भी हमारी पुरानी रूढ़ियाँ ज्योंकी त्यों चल रही है मैं उदाहरण के तौर पर रूठने और मनानेकी प्रथाको ही लेता हूँ, आज हम लोगोंको कितना कष्ट दिया करती है। यद्यपि मैं मानता हूँ कि—

हो ऐब की बू या हूनर की आदत,
मुश्किलसे बदलती है वशर की आदत।
छुटते ही छूटेगा उस गलीमें जाना,
आदत और वह भी उम्र की आदत॥

परन्तु अब आदत छुड़ानेकी चेष्टाकी ही न जायगी, तो वह क्या खाक छूटेगी। भाइयो! जरा साँस ऊपर चढ़ाकर सोचिये कि यह प्रथा कितनी बुरी है कि आज कल बाप-बेटेमें तो बनती ही नहीं है। अब यदि दो प्रेमियोंमें भी न बनी, तो संसार हमें क्या कहेगा?

भाइयों! हमने बहुधा सुना है। कुछ लोग कहा करते हैं कि "साहब, प्रेम तो करें लेकिन अवकाश कहाँ है?" कितनी छोटी बात है। "उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी भीख निदान" तक करनेका समय तो हम निकाल लेते हैं, झगड़ा और विवाह करनेका भी समय है, परन्तु प्रेम करनेके लिये समयका अभाव है! शेम! शेम!!

भाइयों! जरा आगे खिसक आइये पीछे पड़े रहनेका अब जमाना गया। कितने पश्चातापका विषय है कि हमलोग आज अपनी भाषाको भी भूलते जा रहे हैं। हिन्दीकी वर्णमाला ठीक होनेपर भी "बदलो-बदलो" की पुकार मच रही है, परन्तु हम लोग जो कुछ थी, उसे भी नष्ट कर रहे हैं।

अभी कुछ दिन पहले की बात है कि एक प्रेमीने दूसरे प्रेमी को पत्र लिखा था, जिसे उसने ब्लाटिंगपेपरसे न सुखाकर मिट्टी से सुखाया था और इसीलिये मिट्टी अक्षरोंपर चिपकी भी थी। यह पत्र जब दूसरे प्रेमीके पास पहुँचा और मिट्टीसे लथ-पथ अक्षरोंको उसने देखा, तो उसके मुँहसे उसी समय निकल पड़ा था कि—

खत को लिखकर हरूफपर जो डाली मिट्टी।
इसका मतलब है दिलमें गुबार बाकी है॥

भाइयों! बहुत दिन तो नहीं हुए लेकिन यदि आज एक प्रेमी कोई हाथ दैवी शक्तिसे फेंके तो दूसरा कौन समझेगा? हम एक दूसरेको दोषी करार देते हैं, परन्तु यह नहीं सोचते कि भगवान है, लेकिन उन्हें ढूंढ़ने वाले भक्त कहाँ हैं? लैला अब भी है, लेकिन हमारे बीचमें अब मजनू कहां है?

कहनेका मतलब यह है कि हम प्रेमके विषयमें उदासीन हैं। आप बराबर सुनते हैं कि आजकल बात बातमें पुरस्कार दिये जा रहे हैं। अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र और न जाने किस-किस शास्त्र पर पुरस्कार मिलता है, परन्तु कोकशास्त्रका कोई जिक्र ही नहीं करता। ब्रजभाषाकी दोहावाली पुरस्कृत हो सकती है लेकिन 'प्रेम-पँचड़ा' लिखिये तो छापने वाला न मिले! इसका कारण क्या है? हमारी उदासीनता और संगठनका अभाव ही तो! नहीं तो क्या प्रेम-साहित्य भातका रोड़ा समझा जाय कि जो खाये निकाल कर फेंक दे।

महानुभावो! सावधान! कौन हमें प्रेमी बनाना चाहता है और कौन बेवकूफ इसकी पहचान करो। जरा भी बातमें घात दिखाई पड़े कि मुँह तोड़ उत्तर दीजिये। कोई कहे कि ईसा-मसीहकी तरह प्रेम करो, तो उससे कह दीजिये कि हमें फाँसी पर नहीं लटकना है। प्रहलादका उदाहरण सामने रखे तो फौरन मुँह घुमाकर कहिये कि हमें हाथीके पैरोंके नीचे नहीं जाना है। रामकी चर्चा करे तो उत्तर दीजिये कि संसारमें सुख भोगनेके लिये आये हैं, चौदह-चौदह वर्षतक जंगलकी खाक छानने नहीं। देशको छैलोंकी जरूरत है, बैलोंकी नहीं।

अभी अभी जब मैं घरसे आ रहा था, एक ओरसे किसी

के गीतकी आवाज आ रही थी कि 'जगतमें प्रेम ही प्रेम भरा है।' हाँ भाई! जगतमें प्रेम ही प्रेम भरा है! घरसे यहाँ तक मैं आया, परन्तु मुझे तो कहीं कमरतक भी प्रेम भरा न मिला। धोती भींगनेकी कौन कहे, पैरका तलवा भी न भींगा। इससे भाइयो! इस गप्पबाज़ीको गोली मारो। कुछ क्रियात्मक काम करो और चश्मा लगाकर अपनी ओर घूरते हुए संसारको दिखा दो कि प्रेम किस तरह भरा रहना चाहिये। मन्दिरों, मीनारों और पहाड़ोंकी चोटियों तकको अथाह प्रेम-जलके नीचे डुबा दो। मैं यह नहीं कहता कि आगामी वर्ष भी अधिवेशन यहीं पर हो, परन्तु भाइयो! ध्यान रहे, सभापतिको अपने आसन तक जानेके लिये जहाजका ही अवलम्ब लेना पड़े।

प्रेमपुरी-प्रदर्शन

हबड़ासे आसनसोल तक यात्रा सकुशल बीती ! परन्तु आसन-सोल स्टेशन पर गाड़ीके खड़े होते ही एक विचित्र घटना घटी। जिस समय गाड़ी स्टार्ट होनेकी सीटा दे रही थी, प्लेटफार्म पर न जाने कहाँ से एक क्रोधसे भरा साँड़ आ धमका। सब यात्री तो तितर-बितर हो गये, परन्तु बुरे फँसे गार्ड साहब ! लाल झण्डी बहुत हिलाई, परन्तु क्रोधी साँड़ने झण्डीका कुछ भी महत्व न समझा बल्कि दौड़में और तेजी आगई। जाकर गाड़ीको सींगों पर उठा लिया !

सारे प्लेटफार्म पर कोहराम मच गया। छड़ी, छाता, किताब रजिस्टर जो कुछ जिसके हाथमें था, लेकर दौड़ा। मुझसे भी न रहा गया। मिर्जापुरी डण्डा लेकर मैं भी ट्रेनसे प्लेटफार्मपर कूद पड़ा। साँड़ तो भाग ही गया, परन्तु डंडेके डरसे कुछ आदमी भी भाग गये। आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि न तो अब मुझे कोई ट्रेन ही दिखाई पड़ी और न आसनसोलका स्टेसन ही। इस समय मैं 'प्रेमपुरी' के चौराहे पर खड़ा था।

जीवनमें कोई भी स्वर्ण-सुयोग नहीं खोया तब आज ही क्यों खोऊँ, यह सोचकर मैंने प्रेमपुरीमें घूमना आरम्भ किया। क्या क्या देखा, उन सभी बातोंका वर्णन करना असम्भव है, अतः कुछ दर्शनीय स्थानोंसे परिचय करा देता हूँ। आप लोगोंमें से कभी कोई सज्जन प्रेमपुरी जायँ तो मेरा अनुरोध है कि इन स्थानोंको अवश्य देखें।

मजनू म्यूजियम—प्रेमपुरीके श्मशान घाटसे थोड़ा हटकर उत्तरकी ओर है प्रेमपुरीका यह अजायब घर अपने ढंगका एक ही है इसका भवन बड़ा विशाल है, आँगनमें एक बहुत बड़ा पार्क है और पार्कके बीचमें सुनहले सीखचोंके भीतर कब्रमें मजनू सो रहा है। कब्र देखते समय लोगोंको बोलनेकी सख्त मनाही है। इस आशयकी एक तख्ती भी उत्तरकी ओर लगी है जिसपर लिखा है—

"लेहु न मजनू गोर ढिंग, कोऊ लै-लै नाम।
दरदवन्तको नेकु तो, लेन देहु विश्राम॥"

अतः लोग मौन धारण किये हुये चुपचाप घण्टों इस कब्रको देखते रहते हैं। सीखचोंके घेरेके दक्षिण-पश्चिम और पूर्वमें भी एक एक तख्ती लगी है। इन तख्तियों पर क्रमशः लिखा है—

"—चसमन चसमा प्रेम को, पहिले लेहु लगाय।
सुन्दर मुख वा मीत को, तब अवलोकहु जाय॥
२—अद्भुत गति यह प्रेमकी, बैनन कही न जाय।
दरस भूख लागे दृगन, भूखहिं देत भगाय॥
३—अद्भुत गति यह प्रेम की, लखौ सनेही आय।
जुरै कहूँ, टूटे कहूँ, कहूँ गाँठि परि जाय॥

यह अजायब घर प्रतिदिन चौबीस घण्टे खुला रहता है। प्रवेश निःशुल्क है। बड़े-बड़े हालोंमें नाना प्रकारकी अद्भुत चीजें बड़े सुन्दर ढंगसे सजा कर रखी गयी हैं। यों तो सभी संग्रह अपूर्व हैं, परन्तु वह हाल, जिसमें हिन्दू मूर्तियाँ रखी हुई हैं, विशेष द्रष्टव्य है। कुछ मूर्तियोंमें इस प्रकारका भाव दरसाया गया है जैसे—

१—गोस्वामी 'तुलसीदास' साँपको पकड़े अपनी ससुराल की अटारी फाँद रहे हैं।

२ सूरदास "नायिका" के कुचोंको देखकर आँखें फोड़नेकी चेष्टा कर रहे हैं।

३—'सेनापति' कवि बैठे एक नायिका की एड़ीमें महावर लगा रहे हैं।

४—कवि 'पद्माकर' की नायिका सोनेके लिए खड़ी है और आप गुलगुली गिलमें और गलीचा बिछा रहे हैं।

५—मतिराम शयनागारमें लेटे टकटकी लगाये दरवाजेकी ओर देख रहे हैं और नायिका चौखट पर पानी रख कर भागी जा रही है।

६—'बिहारी' शायद विहार कर रहे हैं।

७—महाकवि 'देव' हाथमें एक खूब लाल सेब लिये खड़े हैं और 'बड़े भाग्यसे माल मिलता है' शायद यह सोचकर मुसकरा रहे हैं।

आदि-आदि। प्रेमपुरीमें आनेवाले करोड़ों यात्री इस अजायबघरमें प्रतिक्षण आते ही रहते हैं और नाना प्रकारकी वस्तुएँ देखकर दंग रह जाते हैं।

फरहाद फोर्ट—दुनिया जानती है कि शीरींका आशिक फरहाद पहाड़ खोदनेसे पहले ही मर गया था, परन्तु उसकी स्मृति-स्वरूप प्रेमपुरीमें 'फरहाद फोर्ट' अब भी बना हुआ है। भगवान जानें बात कहाँ तक सच है। परन्तु प्रेमपुरीके निवासियोंका कहना है कि यह किला उन्हीं पत्थरोंसे बना है जिन्हें फरहादने पहाड़से खोदा था। किलेकी पश्चिम ओरकी दीवाल चारों ओरकी दीवालोंसे कम ऊँची है और लोगोंका कहना है कि इसका कारण पत्थरोंका कम पड़ जाना है। अन्य स्थानोंसे पत्थरोंको मँगाकर काम पूरा हो सकता था, परन्तु कहते हैं कि अन्य पत्थरोंको मँगाकर पवित्र स्मारकको अपवित्र करना था। अतः यह दीवाल उतनी ही बनाकर छोड़ दी गई।

आकारमें यह किला कलकत्तेके 'फोर्ट विलियम' अथवा एक अष्टकोणके समान है। भीतर जानेवाले यात्रियोंके लिये इस किलेमें कोई रोक-टोक नहीं है। यहाँ पर सैनिकोंके लिये साफ-सुथरी बारकें बनी हुई हैं तथा परेडमें सैनिकोंको आसनोंके व्यायाम सिखाये जाते हैं।

किलेके दरवाजेपर फरहादकी भव्य मूर्ति है जिसमें पहाड़ खोदनेके समयका दृश्य दिखाया गया है। मूर्तिको देखकर कलाकारको धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता, क्योंकि पसीने-की बूंदें भी दिखाई गई हैं, उन्हें देखकर प्रत्येक यात्रीको ऐसा जान पड़ता है कि फरहादके हृदयमें पहाड़ खोदनेकी वही धुन अब भी है, जो असलमें खोदते समय थी।

इसी किलेके भीतर एक मूर्ति मुगल वंशके शाहजहाँकी भी है जिसमें ताज महलके आगे घुटने टेके शाहंशाह आँखें मूँद-कर मुमताज बेगमका ख्याल कर रहे हैं।

सारंगा सुरंग—प्रेमपुरकी यह सुरंग शायद दुनियाँकी सभी सुरंगोंसे बड़ी होगी, क्योंकि नगरके पश्चिममें जहाँ, 'छबीली भटियारिन'की लोहेकी मूर्ति है, जहाँ 'सदावृत्त सराय' है यह सुरंग बराबर चली गयी है। सदावृत्तकी सरायमें ठहरनेवाले यात्रियोंको प्रायः इसी सुरंगसे जानेमें सुविधा होती है। इस बड़ी सुरंगको देखकर एक बार उनलोगोंके भी छक्के छूट जाते हैं जिन्होंने कभी लन्दनकी टेम्स नदीकी सुरङ्ग देखी है। बनावटका ढंग ऐसा विचित्र है कि यात्रीको हक्का-बक्का खड़े रहनेके अति-रिक्त दूसरा चारा नहीं रह जाता।

सदावृत्त सराय—बाहरसे आनेवाले यात्रियोंके लिये सदावृत्त सरायमें सर्वप्रकारकी पूर्ण सुविधा है। जगन्नाथपुरीका जैसे भात मशहूर है वैसे ही यहाँ भोजनार्थ दी जानेवाली वस्तुओंमें गम, कसम, धक्का, धोखा और जहरका विशेष स्थान है। यात्री

को इन पाँचों वस्तुओंमें जिस चीजके खानेका अभ्यास हो नाम बतानेपर मुफ्त दे दी जाती है।

कुब्जा-कृष्ण कृषि-कालेज—प्रेमपुरीमें पाठशालाओंकी कमी नहीं है। इनमें कुछ पाठशालाओंका संचालनतो पब्लिककी ओरसे होता है और कुछका संचालन कारपोरेशनकी ओरसे। इन सभी स्कूलोंमें प्रेम-सम्बन्धी सभी बातें नये-नये ढंगोंसे योग्य शिक्षकों द्वारा बालकोंको सिखाई जाती हैं। परन्तु कुब्जा-कृष्ण-कृषि कालेज उनलोगोंकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये है जो आगे चलकर प्रेमकी खेती करना चाहते हैं। इस कालेजमें शिक्षा प्रयोगात्मक दी जाती है तथा विद्यार्थियोंको यह अच्छी तरह सिखा दिया जाता है कि कैसी भूमिमें प्रेम-बीज बोनेसे फसल अच्छी तैयार होती है, किस तरह और किस प्रकार देखभाल रखनेसे फसल दूसरे नहीं काट ले जाते हैं। कालेजके प्रिंसिपल इस समय एक हिन्दू हैं।

प्रेमी-प्रेमिका-पोस्ट आफिस—प्रेमपट्टी मोड़पर बने हुए इस पोस्ट आफिसके भव्य-भवनको देखकर तबियत हरी हो जाती है। यद्यपि प्रबन्ध हो रहा है कि नगरमें अन्य छोटे-छोटे पोस्टआफिस भी खोल दिये जायँ, परन्तु अभी यही पोस्टआफिस है जहाँसे सारे नगर निवासियोंका काम चलता है। करोड़ों स्त्री-पुरुष बिना किसी भेद-भावके आते हैं और कामकर वापस लौट जाते हैं। प्रशंसनीय व्यवस्था यह है कि लोगोंको न तो पत्रों पार्सलों आदिपर टिकट ही लगाने पड़ते हैं और न मनिआर्डर या रजिस्ट्री की फीस आदिके लिये ही कुछ देना पड़ता है। प्रेमपुरी निवासियोंका कहना है कि पहले नियम था, परन्तु इधर जबसे लोगोंकी स्थिति खराब हो गई है यह नियम उठा दिया गया है। यहाँ के पोस्ट-मैनोंमें जो खास बात देखी गई वह यह है कि यदि आपके नामकी कोई डाक है तो डेलिवरी तब तक न होगी जब तक आप खुद न

मिलें। सगेसे सगे सम्बन्धीको भी पारसल-मनीआर्डरकी कौन कहे पत्र भी नहीं दिया जाता।

मन्मथ महाराजका मन्दिर—'प्रेम-सागर' जो प्रेमपुरीका प्रसिद्ध तालाब है, उसीके तटपर मन्मथ महाराजका यह मन्दिर भी एक देखनेकी चीज है। जो लोग मन्मथ महाराजको 'अतनु' कहते हैं वे यहाँ आकर विशालमूर्ति देखकर एकबार बगलें झाँकने लगते हैं। मूर्ति लगभग ५०० फीट ऊँची है। दर्शक कितना ही साहसी क्यों न हो इस मूर्तिको देखते ही एकबार उसके शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं और कँपकँपी आ जाती है। मन्दिरमें जानेका मार्ग प्रेम-सरोवरके भीतरसे है। 'प्रेम-सागर' में डुबकी लगाई नहीं कि यात्री स्नान किये सीधा मन्दिरके भीतर मूर्तिके सामने खड़ा है।

भारतके अन्य मन्दिरोंकी ओर जानेवाली राहोंकी भांति यहाँ दोनों ओर कंगालोंका दल नहीं है जो पैसा-पैसा कहकर यात्रीका पीछा करे। मन्दिरमें न तो फूल आदि चढ़ानेका महत्व है और न बछड़ेकी बलि देनेका। यदि किसी दर्शकके हृदयमें पुण्य कार्य करनेकी बड़ी धुन हो तो अपना शीश काट कर चढ़ा सकता है। इस मन्दिरमें कलकत्तेके काली-मन्दिरकी भांति दर्शन करते समय पण्डोंको पैसे नहीं देने पड़ते, क्योंकि वहाँ पण्डे हैं ही नहीं।

शीरी-सिनेमा—प्रेमपुरीमें अभी और सिनेमा हाउस एवं थियेटरहाल नहीं है अतः इसी शीरी-सिनेमा हाउसमें ही महीनेके पन्द्रह दिनोंमें थियेटर होता है और पन्द्रह दिनोंमें सिनेमा दिखाया जाता है। यह सिनेमा हाउस जहाँ मनो-विनोदका सुन्दर स्थान है वहाँ अप-टू-डेट भवन भी देखनेके योग्य है। भीतर सीटें पृथक-पृथक नहीं है, बल्कि दो-दो सीटें एकमें मिली हुई हैं।

जो महानुभाव अकेले जाते हैं, उन्हें भीतर प्रवेश करना निषेध है ही। यदि भूलसे कोई किसी सीटपर अकेला दिखाई पड़ता है तो भीतरसे कान पकड़कर बाहर निकाल दिया जाता है।

लैला-लेडी अस्पताल—प्रेम-गलीके सिरेपर बना हुआ लैला-लेडी अस्पताल भी प्रेमपुरीमें अपना एक विशेष स्थान रखता है! यद्यपि नामसे ऐसा जान पड़ता है कि यह अस्पताल केवल स्त्रियोंकी ही चिकित्साके लिये होगा, परन्तु नहीं, इसमें पुरुषोंकी भी चिकित्साकी जाती है। यह जानकर महान दुःख हुआ कि इसमें प्रवृष्ट होनेवाले मरीज अन्तमें मुर्देके ही रूपमें बाहर निकलते हैं।

मन्सूर-मानूमेंट—'फरहाद-फोर्ट' से पूर्व मन्सूर-मानूमेंटका कहना ही क्या है। घूमते घूमते थक कर गिर पड़िये, परन्तु जी नहीं ऊबेगा। मानूमेण्टकी चोटी काफी ऊँची है। इस चोटाके ऊपर 'मंसूर' की प्रतिमा है जिसमें वह फाँसीपर लटक रहा है।

भजु गोविन्दम्

संसारमें आपको दोनों प्रकारके व्यक्ति मिलेंगे—कुछ आपको सभापति बनानेकी फिराकमें हैं और कुछ बेवकूफ।

× × ×

यदि किसीका सीना देखकर आपको पसीना आ जाता है तो समझ लीलिये कि आपमें अभी काफी कमीनापन बाकी है।

× × ×

सदैव यत्न करते रहो। यत्नसे अब भी कितने ही व्यक्ति 'साहित्य-रत्न' होते रहते हैं।

× × ×

स्त्रियोंको आजादी दीजिये। उन्हें पार्कोंमें चरने-विचरने दीजिये, परन्तु बुद्धिको अपने मस्तिष्कमें ही कैद रखिये उसे एक क्षणके लिये भी चरने-विचरनेके लिए बाहर न जाने दीजिये।

× × ×

अङ्गरेजीके 'ईजी चेअर' शब्दका अनुवाद हिन्दीमें 'आराम-कुर्सी'—बहुत ठीक है बशर्त्ते कि खटमल उसमें दखल न दें।

× × ×

झगड़ा करने और विवाद करनेके लिये दो की संख्या परम

आवश्यक है। इससे कममें काम नहीं चलेगा, अधिक आपकी इच्छापर है।

× × ×

गँवारोंकी कोई अलग दुनियाँ नहीं है। हमारी और आपकी तरह वे भी यत्र-तत्र मौजूद हैं।

× × ×

आपके प्रेमियों और इष्ट-मित्रोंकी संख्या इतनी है कि गिन नहीं सकते। धन है तो चेष्टा कीजिये, फिर देखिये कि बात कहाँ तक सत्य है।

× × ×

पुस्तक चोरी करके लाये हैं या खरीद कर, कोई बात नहीं है। कमरेमें सजाइये तो अवश्य उसपर 'समालोचनार्थ' शब्द लिख दीजिये। कमरेमें आने-जानेवाले समझेंगे कि आप समालोचक हैं।

× × ×

'प्रसव-पीड़ा' समाप्त होते ही एक पत्नीके कष्टोंका अन्त हो जाता है, परन्तु 'भारत' जैसे गुलाम देशमें पतिका कष्ट यहींसे आरम्भ होता है। वास्तवमें 'पुत्र-पीड़ा' प्रसव पीड़ासे कहीं भयङ्कर है।

× × ×

'बिनु घरनी घर भूतका डेरा' कहावत बावन तोले पाव रत्ती ठीक है फिर भी यदि आप विधुर हैं तो आपके लिये यही उचित है कि भूतोंके डेरेमें ही पड़े रहें।

× × ×

मिठाइयाँ खाते समय बातचीत खूब करो। यही समय है जब आप अपनी जबानसे मीठी वाणी बोल सकते हैं।

× × ×

हमारा चेहरा एक फूलकी तरह खिला रहना चाहिये, लेकिन खुला नहीं।

× × ×

बर्फ पानीका परिवर्तित रूप है। परन्तु यह परिवर्तन उतना महत्वशाली नहीं है, जितना पानीके मूल्यमें जो परिवर्तन हुआ है।

× × ×

'विवाह' हमारे जीवनमें सुखकी तरंगे पैदा करता है, परन्तु यदि वह अपना ही 'विवाह' हो।

× × ×

कभी-कभी हम वक्तके पाबन्द इसलिये नहीं हो पाते हैं कि घड़ीका प्रबन्ध नहीं हो पाता है।

× × ×

कुछ लोग कहते हैं कि जो देश रेगिस्तान हैं वहाँके निवासियों-को बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। हम कहते हैं कि कोई कठिनाई नहीं है वहाँ जमीनमें बालू होगी, अतः निवासियोंके पूर्वजोंके चरण चिह्न स्पष्ट होंगे। यह बात तो मानी हुई है कि हम अपने पूर्वजोंके चरणचिह्नों पर चलक जीवनको सुखमय बना सकते हैं।

× × ×

'विवाहित' और 'अविवाहित' इन दोनों शब्दोंमें केवल अ

का अन्तर है। कोश बनानेवालोंने 'अ' का अर्थ स्त्री क्यों नहीं लिखा, इसीपर हमें खेद है।

× × ×

नेपोलियन कहता था कि 'असम्भव शब्द मेरे कोषमें है ही नहीं।' आश्चर्य है कि उसने उस कोशके प्रकाशकका नाम क्यों नहीं लिखा।

●

प्रेमकी खेती

सज्जन वृन्द ! मेरे वंशमें तो कभी कोई किसी एग्रीकल्चर कालेजका प्रिंसिपल या प्रोफेसर रहा ही नहीं है मैंने स्वयं भी इस प्रकारके कालेजोंमें शिक्षा नहीं पाई है। नाम भी लिखाया होता तो भी कोई बात थी, परन्तु यहाँ तो इस प्रकारके कालेजों-में चपरासीकी भी हैसियतसे नहीं रहा। तब आपलोग कहेंगे कि खेती जैसे उपयोगी विषयपर लिखने जा रहे हैं तो घरमें होती होगी उससे कुछ अनुभव प्राप्त किया होगा। लेकिन भाई यह बात नहीं है। मेरे घरमें किसानी नहीं होती। किसानीसे सम्बन्ध जब मैं बहुत याद करता हूँ तो मुझे केवल इतना याद आता है कि मेरे नाना अपने नानाके गाँवमें थोड़ी-सी मूँग-फलीकी खेती करते थे, परन्तु अफसोस, फसल तैयार होनेके मौकेपर मेरे नानाके नाना जो थे उनके पुत्रोंके पुत्र भी उस गाँवमें आ जाते थे और सारी मूँगफलियाँ खोदकर खा जाते थे। परिणाम यह हुआ कि मेरे नाना बहुत इरादा करनेपर भी अपने नातियोंके लिये कभी पावभर मूँगफली भी भेजनेमें समर्थ न हो सके।

अब आप लोग पूछ सकते हैं तब आप किस योग्यतापर इस खेतीकी कलापर कलाबाजी दिखाने जा रहे हैं? भाई साहब क्षमा कीजियेगा। अगर संसारके सारे कार्य योग्यता ही के अनुसार होने लग जायँ तब तो चल चुके संसारके व्यापार। जरा इतिहासके पन्ने उलटकर देखिये, ऐसे कितने ही उदाहरण

हैं कि जिनमें अयोग्य व्यक्तियोंने भी वह कार्य कर दिये हैं जिन्हें देखकर बड़े-बड़े जानकारोंकी भी जान निकल गई है।

दूर क्यों जाइये—हिन्दी साहित्यमें ही ऐसे अनेक व्यक्ति मौजूद हैं 'गदहा' लिखना भी नहीं आता है, परन्तु सम्पादककी हैसियतसे साहित्यकी वह सेवा कर रहे हैं जिसे देखकर भाषा बेवा (राँड़) बनी फिरती है। ऐसे अनेक धनी-मानी सज्जन हैं जिन्हें यह पता नहीं है कि 'सूरसागर' तुलसीदासने बनाया था कि केशवदासने परन्तु इन्हीं महोदयोंने जब सभापतिके आसनसे दहाड़ा है तो बड़े-बड़े साहित्यिकोंको भी नींद आ गई है। अतः अयोग्यता और योग्यताके तो प्रश्न ही को छोड़िये।

लेकिन फिर भी यदि कुछ जानना ही चाहते हैं तो मैं जिस बलपर इस कृषि-शास्त्रपर कुछ कहनेका साहस करने जा रहा हूँ, उसका मुख्य आधार है मेरा लेखक होना। वास्तवमें लेखकका अर्थ ही यह है कि जो प्रत्येक विषयपर धुँआधार लिख सके और वह भी साधारण रीतिसे नहीं बल्कि इस ढंगसे कि उस विषयका जानकार भी एक बार घपलेमें पढ़ जाय और सोचे कि यह मेरी योग्यताकी ही कमी है कि मैं लेखकके विचारोंके साथ नहीं पहुँच रहा हूँ।

इसके अतिरिक्त विषयपर खरे उतरनेका जो मेरा विश्वास है उसका दूसरा कारण यह है, कि मेरा जीवन प्रेम-बीज बिखेरते ही बीत रहा है। यद्यपि आजतक मुझे कहीं भी सफलता नहीं मिली है और अनेक बार परिश्रमसे फसल तैयार करनेपर भी उसे दूसरे ही काट ले गये है, परन्तु फिर भी अभ्यास मनुष्य को पूर्ण बना देता है। बात कुछ नहीं है केवल मुख्य बात मेरी सच्ची लगन है।

लगे हाथ अपनी सच्ची लगनका भी एक उदाहरण पेशकर देना मुनासिब होगा और मेरा तो विश्वास है कि यह उदाहरण असली बातको अपने हृदयमें उसी प्रकार खटसे बैठायेगा जिस-प्रकार तूफ़ान मेलका इञ्जन खटसे डिब्बा जोड़ देता है।

बात उन दिनों की है जब मैं बँगला भाषा बिलकुल न जानता था। मेरे सामने दो शब्द थे। एक तो नलिनो-रजन और दूसरा केश-रंजन, अतः रामलालके भाई श्यामलाल होते हैं इस सिद्धान्तके अनुसार मैं बहुत दिनोंतक नलिनीरंजन और केश-रंजन दोनोंको दो भाइयोंके नाम समझता रहा, परन्तु सौभाग्य या दुर्भाग्यसे एक बार एक बंगलाके जानकार सज्जनने बतलाया कि नहीं दोना भाई नहीं है। नलिनीरञ्जन मनुष्यका नाम है और केश-रञ्जन तेलका नाम है। यद्यपि मैं उस समय आश्चर्यमें पड़ गया था, परन्तु जब इस घटनासे मुझे यह पता लगा कि मेरे मनमें प्रकाशके स्थानपर अन्धकार स्थान बना रहा है तो सच्ची लगनसे बँगला भाषाका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। मुझे कहते हुए प्रसन्नता होती है कि अब मैं इतना बँगला जान गया हूँ कि किसी मिसका भी बँगला आपलोग बता दें तो बिना भावी फलकी चिन्ता किये दन्नसे प्रवेश कर जाऊँ और मुसीबत आ पड़े तो सन्नसे निकल आऊँ। सो यह तो हुई प्रस्तावना। अब इसके आगे जो कुछ कहूँगा वह होगा मेरा विषय-प्रवेश।

बात यह है कि प्रेम कृषि-व्यवसायकी जो शोचनीय अवस्था इस वर्तमानकालमें है उसे देखकर किसे दुःख न होगा। किसान बड़े प्रेमसे जीवन चुनता है, तैयार करता है परंतु अन्तमें सफलताके नामसे मिलता है ठेंगा। इसका कारण क्या है? यही न कि प्रेमकी खेती करनेके लिये उसके पास पर्याप्त ज्ञानका अभाव है। अपने टूटे-फूटे अनुभवकी सहायतासे वह बीज तो बिखेर देता

है, परन्तु सफलताके लिये खुदाकी मरजीका मुँह देखना पड़ता है। आज सभी प्रकारकी खेतियोंमें पाश्चात्य रीतियों तथा आधुनिक विज्ञानके अनुसार प्रणालीमें संशोधन हो रहे हैं, परन्तु प्रेमकी खेती जिसमें कभी-कभी मालगुजारीके लिये सिर भी चढ़ा देना पड़ता है, काम पूर्ववत ही चल रहा है। कितने खेदका विषय है। समयकी माँग है कि समस्त वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसन्धानों द्वारा इस व्यवसायको उन्नतिके मार्गपर घसीटा जाय, परन्तु वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है।

बन्धुओ! हँसनेका विषय नहीं है। किसी समय हमारा भारत देश प्रेम-कृषि-व्यवसायकी दृष्टिसे उन्नतिके शिखरपर था। मजनू फरहाद और सारंग सदाबृक्ष आदि-आदि इसी आर्यावर्त ही के निवासी थे, कहीं विलायतसे नहीं पकड़कर आये थे। परन्तु इन महानुभावोंने उस कलाके हेतु उन गूढ़तम रहस्योंको प्रकट कर दिया है जिनके कारण ऊसर जमीनमें भी प्रेम बीजका अँखुआ निकल सकता है। परन्तु कालचक्रने पलटा खाया। आज इस विषयके किसान भाई माल मारनेके स्थानपर झख मार रहे हैं। दोष उनका नहीं है। सच बात तो यह है कि उन्हें अब इस विषयमें कोई ज्ञान ही नहीं रह गया है। फिर भी अभी कुछ महानुभाव चेष्टा करें तो स्थिति सुधर सकती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं बहुत दिनोंसे इस उपयोगी व्यवसायपर विचार कर रहा हूँ और कई बार इच्छा भी हुई परन्तु भिक्षा-वृत्ति (अधम चाकरी भीख निदान) में फँसे रहने के कारण विवश रहा। अब अवकाश मिला है तथा इतने दिनों में हृदयमें विचारकी बाढ़ भी काफी आ गई है। अतः इस बलसे प्रेरित होकर सार्वजनिक लाभके लिये 'प्रेमकी खेती' पर

मैं बैटरीके सदृश प्रकाश डालने जा रहा हूँ। यदि मेरे इस छोटे और सुझावदार लेखसे प्रेमकी खेती करनेवाले गरीब किसानोंको कुछ लाभ होता हुआ दिखाई पड़ा तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा और इस बिषयपर कुछ और लिखनेके लिए साहस मिलेगा।

चलते-चलते मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि एक तो लेखका विषय ही नया, गूढ़ एवं वैज्ञानिक है, दूसरे इस सम्बन्धमें यह मेरा प्रथम प्रयास है। इसलिए कदाचित् कोई आवश्यक बात छूट जाय तो पाठकोंको मेरे ऊपर किसी प्रकारका प्रहार करनेसे यह अच्छा होगा कि कोई स्वतन्त्र लेख लिख कर प्रकाश डालें। बस ! इसके बाद भूमिकी तैयारी, खाद, सिंचाई निराई और फसलकी तैयारी आदिकी चर्चा की जायगी। शीघ्रतासे घाटेमें रहेंगे अतः आपलोग 'प्रेम' को मुट्ठीमें ही रख कर हमारे आधे लेखकी प्रतीक्षामें अगले बयानका इन्तजार कीजिये।

विवाह-विमर्श

किसीने बहुत ठीक कहा है—"कोई डींग भले ही मारे कि मैं घड़ीका अलार्म सुनते ही रोज सबेरे जग जाता हूँ, परन्तु इस बीसवीं सदीमें हम नवयुवकोंकी आँखें तब तक नहीं खुलतीं, जब-तक अपने विवाहके बाजोंकी ध्वनि कानमें नहीं पड़ती।" खेद है कि रुपया अब भी सोलह आनेका ही होता है और बात तौलनेकी कोई तराजू भी नहीं बनी, अन्यथा या तो मैं उपर्युक्त बातसे सत्रहो आने सहमत होता अथवा तोलकर आप लोगोंको दिखा देता कि वास्तवमें बात चालीस सेरसे एक तोला भी कम नहीं है। विवाहके समय बाजा बजानेकी प्रथाका अर्थ ही यह है कि नवयुवकों जागो, जागो, और भाग सको तो भागो नहीं तो—

"तुलसी गाइ बजाइ कै, परत काठमें पाँव।"

उस दिन अपने पड़ोसी पण्डित अचलायतन जी पाण्डेयसे जब मैंने विवाहके सम्बन्धमें विचार जानने चाहे तो उन्होंने कहा—"टु अर इज ह्यूमन" (वह बशर ही नहीं, जो खता न करे) के सिद्धान्तके अनुसार भूल करना मनुष्यका स्वभाव है। भूलें दो प्रकारकी होती हैं, एक तो जानमें और दूसरी अनजानमें। यदि मुझसे सच-सच पूछा जाय तो विवाहके सम्बन्धमें मैं यही कहूँगा कि मनुष्य जितनी भी भूलें जान-बूझकर करता है, उनमें विवाह करना मुख्य है।

लाला रोशनाईलालका भी विचार इसीसे मिलता-जुलता

था, क्योंकि जब मैंने प्रश्न किया कि लालाजी, क्या आप बता सकते हैं कि आपने विवाह क्यों किया, तो आपने बड़े विचित्र ढंगसे फरमाया—"एक बार गलती हो गयी तो इस प्रकार चिढ़ाइयेगा ?"

'कदाचित' पण्डितजी ने कहा-"भावी आपत्तियोंका सामना करनेके लिये सहर्ष तैयार जरूर रहना चाहिये, परन्तु पता नहीं, पुरुष जाति केवल विवाह जैसी आपत्तिके स्वागतमें ही इतनी तत्परता क्यों दिखलाती है।

स्त्री-सेवकजी शास्त्रीसे एकबार मैंने बहुत आग्रहके साथ पूछा तो उन्होंने क्रोध करते हुए कहा था कि यदि विवाहके सम्बन्धमें विचार जानना ही चाहते हो, तो सुनो—"विवाह इसलिये करना पड़ता है कि समाजने चलते-फिरते प्रेम करनेकी प्रथाको दूषित ठहरा रखा है। एक दम 'स्ट्रिक्टली प्रोहीबीटेड' की तख्ती लगा रखी है। यदि चलते-फिरते प्रेम करनेकी सुविधा मिली होती, तो मैं नहीं समझता कि कोई भी पुरुष विवाह जैसे कार्यमें अपना हाथ या पाँव डालता।"

हास्यरसाचार्य चटोरानन्दजीने अपनी पुस्तक 'मर्द-मर्यादा'में जो कुछ लिखा है, उसे आप लोगोंने पढ़ा ही होगा। "वास्तवमें विवाह एक जीता-जागता मजाक है।"

मेरे एक मित्र हैं, जो अभी अविवाहित हैं। मैंने एक दिन उनसे पूछा तो उन्होंने विवाहकी परिभाषा की कि सच्चे अर्थमें विवाह पुरुषके लिये स्वर्गको इस पृथ्वीपर ला देता है। परन्तु यही विचार जब मैंने पण्डित गीताकिशोर शास्त्रीको सुनाया तो उन्होंने अपना स्टेटमेन्ट इस प्रकार दिया—

'यदि एक अविवाहितने अपनी अनुभवहीनताके कारण ऐसा कहा है, तो मुझे केवल हँसी आती है। परन्तु मैं उसे दोषी नहीं

समझता। मैंने इस साठ वर्षकी अवस्थातक एक—दो नहीं, पूरे पाँच विवाह किये हैं। इस सम्बन्धमें मैंने जो कुछ अनुभव प्राप्त किया है उसके आधारपर मैं तो कहूँगा कि मैं स्वर्ग पानेके लिये पूजा-पाठ करता हूँ, परन्तु यदि आज मुझे यह मालूम हो जाय कि स्वर्गमें भी पुरुषको विवाह करना पड़ता है, तो मैं पूजा-पाठ आज ही बन्द कर दूँ, शंखमें शंखिया भरकर रख दूँ, घण्टी को अण्टीमें लपेट लूँ और मालाको तालामें बन्दकर छोड़ दूँ।

'कदाचित यह ज्ञान इसी वर्षसे आपके मस्तिष्कमें आया है ?' मैंने कहा।

'क्यों ?'

'यदि पहले भी था, तो गतवर्ष यह पाँचवा विवाह क्यों किया ?'

'हाँ, मैं भी यही सोचा करता हूँ।' पण्डितजीने हँसते हुए कहा।

अपनी समझमें बड़ी बुद्धिमानी करते हुए एक दूसरे महोदयने, विवाह क्यों किया, इसका बड़ा विचित्र वर्णन किया। आपने कहा – 'मेरी जेबमें पैसे वगैरह पड़े रहते थे और कई बार पाकेटमारोंने सफाई कर दी थी। पसीनेकी कमाई एक तो किसीसे मुफ्त लुटायी भी नहीं जाती, दूसरे मुझे यह डर लगा रहता था कि किसी दिन जेब कतरनेवालोंका औजार बदनमें न लग जाय। बस, मैंने लोगोंसे परामर्श किया और विवाह किया। मुझे हर्ष है कि नुस्खा लाजवाब साबित हुआ। जेबसे पैसे खोकर अब मुझे सन्तोष भी है और पाकिटमारोंका भय भी छूट गया। श्रीमतीजी घर आते ही जेब साफ कर लेती हैं।

विधुर-जीवन व्यतीत करनेवाले एक सम्पादकजीने पूछनेपर कहा, मुझे विवाहित और विधुर-जीवन, दोनोंका ही अनुभव है। विवाह एक ऐसा कार्य है कि जिसे न तो किये चैन और न, न

किये चैन। पत्नी थी तब परेशान था और विधुर हूँ तो व्याकुल हूँ।

आपने यह भी बतलाया कि विवाह करनेसे बुद्धिपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि मनुष्य विवाह न करे तो प्रतिभा यौवनकी भाँति ही फूटे। आपने स्वामी रामतीर्थकी डायरीसे नीचे लिखे नामोंको सुनाया और कहा, ये विद्वान इसीलिये हो सके कि इन्होंने जीवनमें विवाह किया ही नहीं। नाम ये हैं—

कॉंट, न्यूटन, गैलीलियो, लौक, स्पिनोजा लिवनिट्ज, ग्रे, डाल्टन, ह्यूम, गिबन, पिट, फौक्स, मेकौले, लैम्ब, कोपर्निकस, शोपेन्हर स्पेन्सर, वाल्टेयर, जौन्सन, स्विफ्ट, कूपर इत्यादि।

आपकी ही भाँति मैं भी हँसा जब मैंने महाकवि गालिब की जीवनीमें नीचे लिखी हुई टिप्पणी पढ़ी—

'एक बार गालिबके किसी शिष्यकी स्त्रीका स्वर्गवास हुआ। किसी दूसरे शिष्यने इस दुखद समाचारको आपतक पहुँचाया और यह भी लिखा कि वह दूसरी शादी करना चाहता है। इस स्त्रीसे पहले भी इन हजरतकी एक स्त्री मर चुकी थी। महाकवि गालिबने सूचना देनेवाले शिष्य को लिखा कि 'अमरावसिंह' (जिस शिष्यकी स्त्री मरी थी) के हालपर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते इश्क आता है। अल्लाह ! अल्लाह !! एक वह हैं कि दो-बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक ऊपर पचास वर्षसे जो फाँसीका फन्दा गलेमें पड़ा है, न तो फ़न्दा ही टूटता है और न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि तेरे बच्चोंको मैं पाल लूँगा, तू क्यों बला में फँसता है।'

अब जरा चीनकी एक कोर्टके जज मि० शिन शुन शांगकी विवाहके सम्बन्धमें राय देखिये। 'चिन-चूक-चा' महिलाने उनके यहाँ अपने पतिके विरुद्ध मामला दायर किया था कि वह शिक्षित

व्यक्ति होते हुए भी मेरे साथ अशिक्षितसे भी बुरा वर्ताव करते हैं।

विद्वान जजने मुकद्दमा खारिज कर दिया और फैसलेमें लिखा कि इस महिला के पति महोदय शिक्षित हैं, यह बात माननेके लिये मैं तैयार नहीं हूँ। यदि वे शिक्षित होते तो मैं नहीं समझता कि ये विवाह जैसे पचड़ेमें पड़ते। शिक्षित वही है जो विवाह नहीं करता।

बस यही कुछ विचार हैं। यों तो आप पूछियेगा तो जितने मुँह उतनी बातें होंगी। कोई अन्नपूर्णानन्दजीके लाला मल्लूमल की तरह कहेगा कि हमें रातमें डर लगता था, इसलिये विवाह किया। कोई कहेगा कि कलकत्तेमें रहनेके लिये कमरा लेना था इसलिये विवाह किया। पता नहीं जिस विवाहके लिये दुनियाँ पागल है और कितने ही कुमार अब भी कराह रहे हैं उसी विवाहके लिये लोग इस प्रकारके विचार क्यों प्रकट करते हैं! हिटलर और मुसोलिनी जैसे वीर इसी विवाह-वृक्षके ही फल हैं, परन्तु फिर भी लोग विवाह नामके 'कलि-कल्पतरु-छाँह सकल कल्यान' के विरोधमें क्यों हैं? लेकिन नहीं, जिस पत्तलमें खाना उसीमें छेद करना मनुष्य जातिका बहुत पुराना सिद्धान्त है?

जूता चोरों का इतिहास

फिर उनके घर तक नहीं जाना पड़ा। चौराहे पर ही भेंट हो गयी। लपके हुए चले आ रहे थे। मेरी ही निगाह काम न करती तो काम चौपट हो गया था। उन्हें क्या गरज पड़ी थी कि गर्दन उठाके देखते ? एक सती साध्वी स्त्रीकी भाँति नीची नजर किये चले जाते। और फिर सबसे बड़ी बात तो थी, 'संयोग'। संयोग ही न होता, तो मैं ही इस चौराहे पर क्यों आता ? जैसा कि पहले विचार किया था, 'हनुमान गली' और 'जामवन्त लेन' होकर जाता, तब तो विभीषण-रोड' और 'सुग्रीव स्ट्रीट' के चौराहे पर न पहुँचता ?

खैर ! मैंने जब देखा कि मेरी बगलसे ही वे निकले जा रहे हैं और मुझे नहीं देखते, तो मैंने उनके कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर एक हल्कासा धक्का दिया। जीवनमें उन्होंने सैकड़ों धक्के खाये थे, परन्तु अब शायद मामूली धक्का भी न खानेका प्रण कर लिया था। फौरन घूम पड़े। विचार किया होगा कि सरसे पाँव-तक देखूँगा, परन्तु परिश्रमसे बच गये। सिर देखते ही पहिचान गये। हँस पड़े और मैं भी हँसा। हँसीमें प्रणाम नमस्कार भूल जाना स्वाभाविक ही है। फौरन बात-चीतका सिलसिला जारी होगया।

—'पण्डित जी, मैं आपके घर जा रहा हूँ और आप इधर भागे जा रहे हैं ?'

—'अरे और मै तुम्हारे घर जा रहा था।'

—'चलो अच्छा हुआ'—मैंने कहा। 'यहाँ मधुर-मिलन न होता, तो दोनों आदमी एक दूसरेको गालियाँ देते बैरंग लौटते !'

—'गालियाँ देते हुए क्यों लौटते ?'

मैं कुछ कहने ही वाला था कि पाससे 'फादर एण्ड सन्स कम्पनी' वालेने आवाज दी—बाबूजी दूकानका सामना छोड़ दीजिये। पण्डित जीके मस्तकपर सिकुड़न दृष्टिगोचर होने लगी। झगड़ा करनेके सम्पूर्ण लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़े, उसी प्रकार जैसे एक स्त्रीके प्रसव-पीड़ाके। सड़कपर गाली-गलौज ठीक नहीं है, अतः मैं उन्हें हाथ पकड़कर पासमें पार्ककी ओर ले चला। घासपर बैठते-बैठते आखिर उनके मुँहसे निकल ही पड़ा—'देखा, जैसे 'फुटपाथ' का भी किराया चुकाता है ! कहता है, 'बाबूजी, दूकानका सामना छोड़ दीजिये।'

मैंने कहा—'जाने दीजिये। इन गँवारोंसे झगड़ा न करनेमें ही भलाई है। मेरा जोड़ा कलसे गायब है, पहिले उसके विषयमें कुछ सुनकर मेरी आत्माको शान्त कीजिये।'

—'जोड़ा गायब है ! कबसे, कैसे ? क्या कुछ आपसमें अन-बन हो गयी थी ?' आश्चर्यसे आँखोंकी भृकुटी चढ़ाकर और मुँह बा कर एक ही साँसमें बोल गये।

मैंने कहा—पण्डितजी,.........

बात काटकर बीच हीमें बोल उठे—"ठहरो, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, ताकि मैं सारी बातें समझ लूँ। फिर जैसा उचित होगा किया जायेगा।"

मैं कुछ कहना चाहता था कि उनकी जबान सरपट दौड़ पड़ी और मेरे कानोंपर प्रश्नोंकी झड़ी लग गई—हाँ, तो तुम्हारी विवा-

हिता थी, या तुमने किसीका 'जोड़ा' फोड़कर अपना घर बसा लिया था ? उम्र क्या है ? रूपरंग तो जरूर ही अच्छा होगा ? पड़ोसमें कौन लोग रहते हैं ? गई होगी तो किसीके साथही गई होगी। अकेली कहाँ जायेगी ? अरे हाँ, कुछ पढ़ी-लिखी है ? थानेमें इत्तला कर दी है या नहीं ?

अब मुझसे न रहा गया। मैंने जरा जोरसे कहा—पण्डितजी, ठहरिये। मेरी जोरू नहीं गायब है, जोड़ा गायब है, जोड़ा–जूता।

पण्डितजी—जोरसे हँस पड़े, जैसे किसी पनिहारिनका भरा घड़ा भभक पड़ा हो। भरपेट हँसकर बोले—चलो, खैरियत हुई, मैंने तो समझा कि किसी कम्बख्तने तुम्हारा बसाबसाया घरही उजाड़ डाला। हाँ तो जोड़ा तुम्हारा कैसे गायब हुआ ?

पण्डितजी, बात यह है कि एकबार देहातमें सत्यनारायणकी कथा सुननेके लिये एक सज्जनके घर गया था। धार्मिक स्थानमें जूता पहिनकर बैठना शास्त्रोंसे वर्जित है, यह तो आप जानतेही हैं। मैं जोड़ा बाहर छोड़कर भीतर गया, परन्तु वापस आनेपर जोड़ा अकेला भी न था। तबसे सभा सुसाइटियोंमें जाना भी छोड़ दिया था। परन्तु कल एक स्थानपर कवि-सम्मेलन था। कविता सुनानेकी गर्ज़से वहाँ गये बिना सन्तोष नहीं हो रहा था। अतः चला तो गया, परन्तु कवि-सम्मेलन समाप्त होनेपर लौटा तो 'सत्यनारायण' की कथावाली घटना आँखोंके आगे फिर नाचने लगी। आप तो लेखक हैं क्या जूता चोरोंके विषयमें कुछ प्रकाश डालेंगे ?'

पण्डितजीने कहा—मैं बैटरी नहीं हूँ जो प्रकाश डालूँ, परन्तु शायद तुम्हारे विचार इनके विषयमें कुछ सुननेके हैं। इन पर तो एक बार मैं संक्षिप्त इतिहास लिख रहा था। परन्तु पर्याप्त सामग्री न मिलनेसे न लिख सका।'—

—'कहीं कुछ विवरण मिला था ?' मैंने पूछा।

—'लेकिन कुछसे सब कुछ तो नहीं हो सकता ? इतिहास लिखनेका ढंग तो यही है कि चार पुस्तकें रखकर उनके आधार पर कुछ विचार प्रकट कर दो, यदि विस्तृत-विवरण मिलता, तो मैं संक्षिप्त इतिहास लिख सकता था। संक्षिप्तसे विस्तृत मैं लिख नहीं सकता। 'टाड' साहब जैसे इतिहासकारने भी केवल इतना लिखा था कि जूता चोरोंके विषयमें बड़ा मतभेद है, कुछ लोग कहते हैं कि आर्योंकी तरह ये भी मध्य एशियासे आते और धीरे-धीरे सारे देशमें फैलते गये और कुछ लोग कहते हैं कि भारत ही में 'अमीरअली' ठगने जिन लोगोंको अपने दलसे छाँट दिया, वे आगे चलकर जूता चुरानेका काम करने लगे। भारतमें इनकी सन्तानें आज भी जूता चुरानेका कार्य कर रही हैं, परन्तु अब ये भी समाजके अन्तर्गत है। अतः इनके विषयमें कुछ लिखना समाजकी बुराई पर प्रकाश डालना होगा।

प्रोफेसर ईश्वरीप्रसादने इस सम्बन्धमें बिल्कुलही कुछ नहीं लिखा है। जब मैं पत्र लिखकर कारण पूछा, तो उन्होंने इस प्रकार शंका समाधान किया।

'भारतमें जितने चोर-डाकू आये, वे या तो खैबर आदि दर्रेसे आये या समुद्री मार्गसे। परन्तु इन जूता-चोरोंके विषयमें अभी यह भी नहीं तै हुआ है कि ये किधरसे आये। अतः स्वयं जभी किसी नतीजेपर नहीं पहुँच सका, ऐसी हालतमें क्या लिखता ?'

मसजिद भी आदमीने बनाई है या मियाँ।
बनते हैं आदमीही इमान और खुतबा-ख्वाँ।
पढ़ते हैं आदमी ही कुरान और नमाज याँ।

और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियां।
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी॥
महाकवि 'नजीर'

अन्य लोगोंने इतिहासमें जिक्र भी नहीं किया था और न पत्रोंके ही उत्तर दिये। अतः मैंने काम रोक दिया। हाँ एक पत्रमें जिसमें हस्ताक्षर नहीं थे, इतना विवरण और मिला था—

'...जूता चोरोंने इस युगमें काफी उन्नति की है। पहिले ये जब दूसरेके जूते चुराते थे, तो कमसे कम अपने पुराने जूते छोड़ जाते थे, परन्तु आजकल ये स्वयं नंगे पाँव आते हैं और इसीलिये जिनका जोड़ा ले जाते हैं उन्हें नंगे पाँव ही घर जाना पड़ता है।'

इसका अनुभव अभी हालमें ही पंडित विष्णुदत्तजी शुक्ल को हुआ है। सुनते हैं, 'पत्रकार कला' के बाद वे इस चौर्यकला पर भी कोई ग्रन्थ लिखने जा रहे हैं। इस सम्बन्धमें थोड़ासा 'रिसर्च वर्क' उन्होंने जापानमें भी किया है।

पण्डितजी हँसते हुए फिर कहा कि जिन दिनोंमें जूता-चोरी के विषयमें रिसर्च कर रहा था, जूता-चोरोंकी दो हिकमतें ऐसी सुननेमें आईं कि मैं दंग रह गया।

—'वे क्या थीं ?'—मैंने पूछा।

—'एक तो यह कि एक देहाती जूता-चोर सभा-सुसाइटियोंमें जाता था, तो साथमें कपड़ेसे ढका एक पिंजड़ा हाथमें रखता था। जब मौका मिलता, तो एक बढ़िया जोड़ा उसी पिंजड़ेके भीतर खिसका देता। घर सबके साथ आता। जिसका जोड़ा गायब होता, वह कुहराम मचाता। पिंजड़ेमें कोई पक्षी होगा, यह सोच कर कोई उसपर सन्देह न करता। एक बार किसी खुर्राटने ताड़ लिया, जब चलने लगा, तो पिंजड़ेकी तलाशी ली गई। पक्षीके स्थानपर जब लोगोंको एक जोड़ा जूता नजर आया, तो लोगोंको

उसकी बुद्धिपर वाह-वाह करना पड़ा, लेकिन यह काम खराब था, इसलिए लोगोंको क्रोध भी आया। अन्तमें उस पिंजड़ेवाले जूता-चोरको लोगोंने पकड़ लिया। यह भी तै किया गया कि जूता-चोरको जूतेसे ही पीटना चाहिये। फिर क्या था! बेचारेपर इतने जूते बरसे कि ऐसा मालूम हुआ कि पिंजड़ेका पत्ती ही उसकी खोपड़ीपर फड़फड़ा रहा है।'

"और दूसरा जूता-चोर?"

—'उसका तो किस्सा कमालका था। यदि उस प्रकारके जूता-चोर हों तो समाजको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किस्सा इस प्रकार है कि वह पूरा जेण्टिलमैन था। दो जूता बनानेवाली कम्पनियोंमे उसने थोड़ा-थोड़ा एडवांस देकर अपने पैरके नापका एकही डिजाइनका आर्डर दे दिया और कहा कि हम अमुक होटलके अमुक नम्बरमें ठहरे हैं। आदमीके हाथ जोड़ा भेजकर रुपया मँगा लेना। एकको दिनके तीन बजेका समय दिया और दूसरी कम्पनीको उसी दिनके साढ़े तीन बजेका।

नियत दिन पहली कम्पनी वालेका आदमी गया, तो उसने पहिनकर देखा और कहा, बायें पैरका जूता पैरमें कस होता है इसे जरा पहले ढीला कर लाओ। एक जूता क्या करेगा, यह सोचकर आदमी एकही लेकर ठीक करने गया। इधर साढ़े तीन बजे दूसरी कम्पनीवाला पहुँचा, तो उसे दायें पैरका ठीक करनेके लिए लौटा लाया। दोनों ठीक करके वापस जब पहुँचे तो हजरत नदारद थे। दोनों के पासके जूतोंसे एक जोड़ा और बन सकता था परन्तु दोनों में क्या समझौता होता? बना-बनाया जोड़ा तो उसीके काम आया, जिसने इतना परिश्रम कर दो कम्पनियोंको हैरान किया था।

एक बात और है। जबसे जूता चोरोंका आतंक बढ़ा है,

जनता भी सतर्क है। अब लोग सभा-सुसाइटियोंमें जाते हैं, तो एक जूता दूसरी जगह उतारते हैं और दूसरा दूसरी जगह। फिर भी जूता-चोर अपने प्रयास में शिथिल नहीं हैं। वे भी अब' एक मिल गया है, दूसरा ढूढ़ता हूँ, गानेके साथ कार्य करने लगे हैं।

पण्डितजीकी रिसर्चका मैं लोहा मान गया। मैंने कहा—पण्डितजी! तब मुझे सब्र ही करना चाहिये। ये तो 'व्यापि रहे ब्रह्माण्ड' जान पड़ते हैं। वास्तवमें आपकी इतनी रिसर्चसे मेरी आत्माको बहुत-कुछ शान्ति मिली है, ईश्वर आपकी आत्माको 'स्वर्ग में शान्ति दे, ऐसी मेरी कर-बद्ध प्रार्थना है।'

'क्या कहा?' उन्होंने पूछा

'कुछ नहीं, चलिये घर चलें' मैंने कहा।

चमार चौदस

१—संसारमें यदि आप तीन ही बातों पर ध्यान रखें तो कभी धोखा नहीं खा सकते हैं।

(अ) पत्नीवाले विवाहित पुरुषोंकी बातपर कभी विश्वास न कीजिये, क्योंकि इन्हें बहानेबाजी और माफी माँगनेका अभ्यास होता है।

(ब) अविवाहितोंकी रायपर कभी कोई काम न कीजिये, क्योंकि इनका ज्ञान अधूरा होता है।

(स) विधुरोंके आगे अपने दुःख की चर्चा न कीजिये, क्योंकि इन्हें अपने ही दुःखसे फुरसत नहीं है अतः आपकी कोई सहायता न कर सकेंगे।

२—अभिनेत्रियोंसे लगे नेह और फूस के बने गेहपर कभी भरोसा न करो। ये अधिक टिकाऊ नहीं होते हैं।

३—वास्तवमें जो मजा 'इन्तजार'में है। वह 'वस्ल' में नहीं है, परन्तु ध्यान रखियेगा, कहीं ऐसा न हो जाये कि सारी जिन्दगी इन्तजारमें ही समाप्त हो जाय।

४—संसार असार है अतः न जाने कितने आदमी मरते ही रहते हैं, परन्तु धन्य है वे जो 'किसी पर' मरते है।

५—दूसरेको पाकिट मार माल मारनेसे यह कहीं अच्छा है कि आप घरपर बैठे बैठे मक्खियाँ मारें।

६—'दिल लगाना' दिल्लगी नहीं है, अतः खूब सोच-समझ

कर ही कहीं दिल लगाइये अन्यथा अच्छा यही है कि कोई छोटी-मोटी दुकान खोलकर पान लगाइये।

७—लड़के तो लड़के ही हैं परन्तु ध्यान रहे कभी-कभी बूढ़े भी लड़कपन कर जाते हैं। और वह लड़कपन है किसी कमसिन लड़कीके साथ शादी करना।

८—वह भी एक जमाना था जब आपके कानों में आवाज पड़ती थी कि 'उनकी बहू आ रही है, उनकी पतोहू आ रही है, और आज-कल क्या आवाज आती है, इसे तो आप जानते ही हैं 'उनकी मोटर आ रही है।

९—सुग्रीव और अङ्गद भी मित्र ही थे जो अपने मित्र रामको अयोध्यातक छोड़ने आये थे, परन्तु आज-कलके मित्रोंसे अधिक आशा न कीजिये। बहुत करेंगे तो आपको स्टेशन तक छोड़ आयेंगे।

१०—कृपया नोट कर लीजिये। झगड़ा करने और विवाह करनेके लिये दो की संख्या परम आवश्यक है। इससे कममें काम नहीं चलेगा, अधिक आपकी इच्छा पर है।

११—किसीसे बात कीजिये तो इस ढंगसे कि फँस जाय, न कि हँस दे।

१२—"विवाहित" और "अविवाहित" शब्दोंमें केवल 'अ' का अन्तर है किन्तु क्या आपने किसी शब्दकोषमें 'अ' का अर्थ स्त्री देखा है? यदि नहीं तो फिर हिन्दी के शब्दकोष कैसे उपयोगी कहे जा सकते हैं।

१३—पतंग आसमानमें लड़ाये जाते हैं और आँखे जमीनमें लड़ाई जाती हैं। अतः क्या 'आँख लड़ाने' और 'पतंग उड़ाने' में 'जमीन आसमानका अन्तर नहीं।'

१४—जिनके पहलूमें कभी यार पड़े रहते थे,
मुशायरेमें आज वह जूते दबाये बैठे हैं ?'

इस शैरमें कितना करुण-रस है ?

मेरी शादी

जबतक देशमें वह दिन नहीं आता कि विवाह की ओखलीमें सिर देनेसे पहले नवयुवक अपनी भावी पत्नीका रूप-रङ्ग देख सकें तबतक सभी को मेरे एक विचारसे सहमत होना ही पड़ेगा वह विचार यह है कि आजकल विवाहकी बात-चीत माता-पिता तो करते ही हैं, परन्तु पत्नीका चुनाव करनेवाले दूसरे होते हैं और इनमें एक तो है ईश्वर और दूसरा शैतान। पहचान यह है कि यदि विवाहके बाद आपको अपनी पत्नीके प्रथम दर्शनमें सन्तोषका अनुभव हो तब तो चुनावमें ईश्वरका हाथ रहा है और यदि कपाल ठोंकनेकी नौबत आ जाय तो समझ लीजिये कि इस सम्बन्धमें शैतानने भाग लिया है।

मेरी शादीकी बात-चीत जहाँ पहले चल रही थी वहाँकी इन्कायरी जब मैंने कराई तो पता चला कि इसमें शैतानका ही हाथ है। जान-बूझ कर खन्दक़में कोई नहीं गिरता, मैंने भी मुनासिब न समझा। आख़िर सम्बन्ध विच्छेद करा कर ही दम लिया। परन्तु अफसोस! पीछे पता चला कि वह सम्बन्ध तो ईश्वर ही करा रहा था। शैतानका हाथ तो उस सम्बन्धमें था जहाँ सच-मुच मेरी शादी हुई।

घटना इस प्रकार है कि पटना युनिवर्सिटीसे जब मैं बी० ए०

की डिग्री लेकर निकला तो घर आते ही घरवालोंको मेरे भावी-कार्यक्रमपर विचार करना पड़ा। लगातार कई दिन तक इसी विषयको लेकर खूब चखचख रही, परन्तु जब सबका सब निकला तो यह कि अब पीछे चाहे जो कुछ हो लेकिन पहले यदि कोई कार्य होगा तो मेरी शादी ! खैर घरवालोंकी किसी भी रायमें मैंने कभी असन्तोष नहीं प्रकट किया था तब आज ही मैं क्यों विरोध करता। मैंने स्वीकार कर लिया।

आजकल बी० ए० करके कोई अपनी रोटी कमा ही लेगा, यद्यपि इसपर अब किसीको भी विश्वास नहीं रहा, परन्तु संसारमें यदि सभी एक मत हो जायँ तो संसार संसार क्या ? आप अच्छीसे अच्छी बात कहिये दो चार विरोधी निकल ही आयेंगे। मेरी उपर्युक्त बात से भी सभी सहमत नहीं हैं। हजारों नहीं लाखों बल्कि सभी बी० ए० बेकार ही क्यों न घूमें परन्तु इसी देशमें एक दल ऐसा भी है जो समझता है बी० ए० होना लाट हो जाना है। इस दलके निर्माता हैं लड़कीवाले पिता-गण। यदि किसी लड़के के बी० ए० होने का संवाद इन महानुभावोंके कानमें पड़ा और समाज के नियमसे इनकी लड़कीकी शादी उस लड़केसे हो सकती है। तो फिर इनका विश्वास है कि इनकी लड़की पद्मिनी ही बनकर रहेगी।

और आप लोग यही जानते हैं कि यह सुधार युग है। दहेजादि प्रथाओंके विरुद्ध कितनी कार्यवाही हो रही है। लेकिन मेरा विचार है कि इन प्रथाओंसे और चाहे जो कुछ हो परन्तु एक लाभ बड़ा ही नहीं, सबसे बड़ा है। बात यह है कि यदि यह कठोर बन्धन न होता तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक-एक लड़के के पीछे असंख्य लड़कीवाले आपसमें लड़ मरते। कमसेकम हमारे पिताजीके पास जितने महानुभाव आये थे यदि

उतने भी सबके यहाँ आते होंगे तो भला आप ही सोचिए, शादी होगी एक के यहाँ और शेष से पीछा छुड़ानेका और कौन-सा रास्ता हो सकता है ?

कहनेका मतलब यह है कि 'आपत्तिकाले' पिताजीने भी इस प्रथाको अपनाना श्रेयस्कर समझा। पाँच हजारसे मेरी बोली शुरू हुई तो छः हजार, सात हजारसे एक दम नौ हजार तक पहुँची। अन्तमें जब एक महोदयने दिल्लीसे पत्र भेजकर दस हजारकी आवाज किसी और फिर लगभग एक मासतक किसीने साँस न ली तो घरवालोंने मेरा भावी ससुर उन्हींको ठहराया।

एक मोटी-सी मिसाल है कि 'बारह बरस दिल्लीमें रहे और भाड़ झोंकते रहे' परन्तु न जाने घरवाले इस सम्बन्धसे क्यों बहुत प्रसन्न हुए, सभी एक साथ भविष्यकी कल्पनाओंमें मस्त होने लगे। एक साहबने तो साफ कह भी दिया कि दिल्लीमें जब कारबार करते हैं तो काफी मजेमें होंगे। दस हजार तो अभी देनेको कह रहे हैं, शादी हो जानेपर जो न दे निकलें सो थोड़ा। मैं ? मैं सोच रहा था भावी श्रीमतीजीके रूप-रंगके विषयमें। सहसा ध्यानमें आया अपना परम मित्र 'मुरारी' तो वहीं पर है, तब क्यों न शादीके पहिले उसीसे अपनी श्रीमती-जीके ऊपर एकसंक्षित नोट मँगा लूँ। मैंने उसी दिन मुरारी को एक पत्र लिखा—

प्रिय मुरारी,

जबसे तुम यहाँसे गये तुम्हारे हर आठवें दिनके लिखे कोई भी पत्र मुझे नहीं मिले ! वादा किया था तो लिखा जरूर होगा। यदि इस पत्रके बाद उत्तरमें तुम्हारा पत्र न आया तो पोस्टआफिस वालोंको चिट्ठियाँ ठीकसे न पहुँचानेके लिए फटकारूँगा।

हाँ, एक बात और है। मेरी शादीकी बात-चीत तुम्हारी दिल्ली

में ही इस समय चल रही है। मैं तुम्हारा सबसे बड़ा कृतज्ञ हूँगा यदि किसी प्रकार तुम······के···नम्बर के मकानसे······उनकी लड़कीका हुलिया प्राप्त कर भेज सको।

तुमने जासूसी पुस्तकें बहुत पढ़ी है यदि इस जासूसी काममें तुम सफल हो सके तो मैं तुम्हारे जासूसी पुस्तकोंके पढ़नेके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। आशा है कि शीघ्रही पूरा विवरण भेजोगे। शादी के अब अधिक दिन नहीं रहे।

तुम्हारा स्नेही

··················

पत्र लिखनेके बाद बारह दिन व्याकुल ही रहा, परन्तु तेरहवें दिन मुरारीका पत्र मुझे मिला जो कि इस प्रकार था—

पत्र मिला। खेद है कि कार्योंमें इतना फंसा रहा कि आपको तो क्या अपनी पत्नी को भी अब समयानुसार पत्र न लिख सकूँगा।

आपने जिस कार्यके सम्बन्धमें मुझे जासूसी पुस्तकोंतककी याद दिलाई है उसे तो मैं बहुत आसान समझता हूँ।

आप जाकर आश्चर्य करेंगे कि जिन महानुभावके यहाँ आपकी शादीकी बातचीत चल रही है उनके घर मेरा रोजही का आना जाना रहता है। आपके भावी साले साहब मेरे घनिष्ट मित्रोंमें से हैं। घनिष्ट मित्रोंके घरसे किसीका कितना घनिष्ट सम्बन्ध रहता है इसे बतलानेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता।

परन्तु 'विवाह' के सम्बन्धमें जब मैं सोचता हूँ तो मेरी दशा 'साँप छछुन्दर' वाली दशा हो जाती है! उधर भी घनिष्ठता और इधर आपसे भी घनिष्ठता। लेकिन नहीं, इस अवसरपर मैं आप को धोखा नहीं खाने दूँगा।

बात यह है कि मेरी रायसे आप जीवन बिना शादी किये ही

बिता डालिये, परन्तु कमसे कम आप इस लड़कीके साथ शादी कर अपना जीवन भार न बनाइये। जिस समय मैं लड़कीके गुण-कर्म-स्वभाव और खासकर रूप-रंगके विषयमें सोचता हूँ मुझे हर पहलूसे यही कहना पड़ता है कि ईश्वर इस शादीसे आपकी रक्षा करे। इस समय अधिक न लिखूँगा, आप दुखदशादीके परिणाम और लङ्काकी किसी राक्षसीके चित्रकी कल्पना करते हुए थोड़ा सोचिये। मैं आगामी पत्रमें सब बातें खोल कर जरूर लिखूँगा! बस।

आपका—

'मुरारी'

ओह! मुरारीके इस पत्रको पाकर मेरी दशा दुर्दशामें परिणित हो गयी। मैंने न कुछ सोचा न विचारा। उसी क्षण मुरारी को एक कार्ड इस प्रकार लिखा।

मेरे प्यारे मुरारी!

तुम्हारे पत्रको पाकर मैं सहम गया हूँ। मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया है। मुझे सूझ नहीं पड़ता कि क्या करूँ। अब मुझे केवल तुम्हारा सहारा लेना ही उचित जान पड़ता है।

प्यारे मुरारी! मेरा जीवन तुम्हारे हाथमें है। इसे बनाओ या बिगाड़ो। बहुत अच्छा हो कि तुम पिताजीका दिमाग उस विवाह के विषयमें शीघ्र ही घुमा दो। आशा है किसी सुन्दर तरकीबसे तुम सफलता पाओगे और इस मित्रको कृतज्ञतासे जीवन भरके लिये आभारी कर दोगे।

उक्त कार्ड छोड़नेके बाद लगभग दस दिन बादही पिताजीके पास हमारे भावी ससुरजीका पत्र आया। इस पत्रको पाकर वे न जाने क्यों दिन भर किसी बड़े गहरे सोचमें पड़े रहे। मुझे अब

यह जाननेकी बड़ी उत्सुकता हुई कि देखें आखिर पत्रमें है क्या ? रातमें जब वे भोजन करने गये मैंने उनके कोटकी पाकिटसे पत्र निकाला। पढ़नेपर उस पत्रमें इस प्रकारका मजमून किला।

"आपका पत्र मिला, मुझे कहते हुये खेद होता है कि आप जैसे शिक्षित व्यक्ति भी मनुष्यतासे कोसों दूर हैं। जरा आप फिर सोचिये कि क्या आपको इस प्रकारकी बातें लिखना किसी प्रकार उचित है ?"

यों तो आपका सारा पत्रही ऊट-पटांग बातोंसे भरा है, परन्तु मैं केवल दो एक बातोंके सम्बन्धमें कहकर ही आपकी अनुचित कार्यवाहीके लिये धिक्कारूँगा।

मेरी लड़की काली है, कानी है और चेचकके दागोंसेही क्या अनेक अवगुणों से सम्पन्न है, परन्तु फिर भी वह मेरी लड़की है। आपको मेरे यहाँ सम्बन्ध न करना था तो न करते, परन्तु क्या एक पिताके पास उसकी लड़कीके सम्बन्धमें इस प्रकारकी अनगल बातें लिखना सभ्यता है ?

मुझे हर्ष है कि मैं अपनी लड़कीका सम्बन्ध करनेसे पहले ही आपके असभ्यपनसे परिचित हो गया। यदि शादीके बाद आपके कलुषित हृदयका पता मिलता तो मुझे जीवनभर पश्चात्तापकी अग्निमें जलना पड़ता।

खैर! आपने यह व्यर्थ ही लिखा है कि मेरे लड़केका सम्बन्ध यहाँ नहीं हो सकता। मैं स्वयं भी आपके यहाँ सम्बन्ध नहीं करना चाहता और न कोई शक्ति सफलता ही पायेगी। परन्तु आपको अपने असभ्य शब्दोंसे भरे पत्रके लिये शीघ्रही क्षमा माँगनी होगी अन्यथा मैं अदालतमें आपके विरुद्ध मान-हानिका केस चलाऊँगा। "किम् अधिकं ?"

पिताजीने कोई पत्र इस प्रकारका नहीं लिखा था, परन्तु फिर

भी भावी ससुरजीका इस प्रकार का पत्र पढ़कर मैंने मन ही मन ईश्वरको धन्यवाद दिया और साथही साथ मुरारीके हथकण्डेकी सराहना की। मुझे अब तनिक भी सन्देह न रहा कि मेरी शादी अब दिल्ली वाली लड़की से और कमसे कम उस काली, कानी और चेचकके दागवाली लड़की से न होगी। पत्र मैंने ज्योंका त्यों पिता जीके पाकिटमें रख दिया और उस दिन गहरी नींदमें सबेरे सात बजे तक सोता रहा।

दूसरे दिन पिताजीने घरके सभी लोगोंको यह पत्र सुनाया और सबकी सलाहसे पिताजीने हमारे उस भावी ससुरजीको इस आशयका पत्र लिखना तै किया कि "यद्यपि मैंने कोई भी पत्र आपके लिखे हुए शब्दोंका नहीं लिखा और मुझे पत्रकी इबारतसे आश्चर्य होता है कि यह कार्यवाही आखिर है किस बदमाश की, परन्तु फिर भी लड़कीके विषयमें दो-तीन बड़े दोषोंको आप जब स्वयं स्वीकार करते हैं तो अब मैं अपने लड़केका सम्बन्ध आपके यहाँ भूल कर भी नहीं करूँगा। अब आप इस सम्बन्ध के लिये कोई भी चेष्टा न कीजियेगा और न दूसरा पत्र ही लिखियेगा। मैं अपने पत्रके लिये इस जन्ममें कभी भी क्षमा न मागूँगा, क्योंकि एक न तो वह मेरा लिखा पत्र ही है और न मैं आप जैसोंकी गीदढ़-भभकी से डरनेवाला व्यक्ति ही हूँ। आप केस शौकसे कीजिये। परन्तु कृपया अब सम्बन्धके विषयमें स्वप्नमें भी कोई आशा न कीजियेगा।"

× × ×

अधिक अब कहाँ तक कहूँ! आप लोग अब यही समझ लीजिये कि फिर मेरी शादी दिल्लीमें नहीं हो सकी। मुरारीने जो लिखा था उससे दिल्लीवाली शादीका पुल विध्वंस कैसे न होता।

पिताजीने हज़ारों पर पानी फेरकर भी यही उचित समझा कि मेरी शादी अब दूसरी जगह ही हो और फलतः मेरी आधुनिक ससुराल अब इटावा है।

लेकिन क्या अब इस जन्ममें प्रसन्न हो भी न सकूँगा। मधुर मिलन की प्रथम रात्रि ही में मैंने रातभर यह सोचा था कि मुरारी का दिया हुआ हुलिया मेरी इस पत्नीके सम्बन्धमें था या दिल्ली वाली पत्नी के।

और अब तो मैं 'मुरारी' को दिन रात गालियाँ भी देता हूँ। इसलिये कि उसने मित्र होकर मेरे साथ शत्रुका काम किया है। आप भी उसे हमारे साथ यही कहिये यह जानकर कि उसने उसी लड़कीसे शादी की है जहाँ की चर्चा मैंने ऊपर की है।

कृपया अब आप लोगोंको कभी शादी की आवश्यकता पड़े तो लड़की अपनी ही आँखोंसे देखकर शादी कीजियेगा। घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र की रायसे भी कहीं न फंसियेगा। आजकलके मित्र अपने स्वार्थके आगे आपकी परवाह न करेंगे। और इसी-लिये तो एक उर्दूके शायरने कहा है—

"क्या किया ख़िज्र ने सिकन्दर से,
अब किसे रहनुमा करे कोई॥"

लखपती बनने के उपाय

प्यारे पाठको ! कदाचित् आप लोगोंसे यह बात छिपी नहीं है कि प्रत्येक 'गुप्त मन्त्र' बतानेके पहले किसी-न-किसी देवी या देवताकी प्रार्थनाकी जाती है। यद्यपि मेरा 'गुप्त मन्त्र' आज से 'गुप्त मन्त्र' न रहकर 'प्रकट मन्त्र' हो जायगा, फिर भी मुझे प्रार्थना तो करनी ही होगी! मैं अपना 'देवी-देवता' आप लोगोंको ही चुनूंगा और हाथ जोड़कर प्रार्थना करूँगा :—

नं० १—ऐसे ही रङ्गरेज होते तो अपनी ही दाढ़ी रङ्ग लेते। पहले खुद लखपती बन लीजिये फिर दूसरोंको बनाइयेगा। यदि आप इस प्रकारके विचारोंके आदमी हैं तो आप इस लेख को न पढ़िये। 'मन्त्र' पर जब विश्वास ही न रहा तो आपको सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें मुझे सन्देह है।

नं० २—यदि आप लखपती पहले ही से हैं तो भी आप इस लेखको पढ़कर व्यर्थमें अपना समय नष्ट न करें। 'लालच बुरी बलाय' एक तो कहावत ही है, दूसरे लखपतीसे ऊँचे बनाना मेरी शक्तिके बाहर है।

नं० ३—पहले उपायसे अन्तिम उपाय तक कुछ लेख आपको पढ़ना ही होगा। हमें आपकी राशि वगैरहका पता नहीं है, अतः यह भी पता नहीं है कि किस उपायसे आपको सहायता मिलेगी। 'कन्या-राशि' वालोंके लिये उपाय नं० २ का प्रयोग रामबाण नहीं तो लक्ष्मण बाणका असर जरूर करेगा।

४—बहुत दिनसे अभ्यास न रखनेके कारण, बहुत सम्भव

है, कहीं-कहीं बहक जाऊँ। इसलिये कृपया महक पाते ही सचेत कर दीजिये। दोनों ही अचेत रहे तो खेतमें तो क्या, खलिहानमें भी विजय नहीं मिलती।

५—कोई साहब यह भी सोचनेका कष्ट न करें कि लच्छेदार भूमिका बाँध कर दादकी दवाकी डिब्बयाँ बेचूँगा। मैं 'लेखक' ही नहीं, 'केवल लेखक' हूँ !

एक बात और—

अधीर तो आप हो ही रहे होंगे, परन्तु उपाय बतलानेके पहले मैं एक बात और कहूँगा। बात यह है कि यही पाँच-सात दस-बीस बरस हुए होंगे, लखपती बननेके लिये कुछ उपाय बतलानेके लिये कुल उपाय मुझे एक बाबाजीने बताये थे। बाबाजी का संक्षिप्त परिचय यह है कि आप बचपनमें दो भाई थे। घरमें कई पीढ़ियोंसे लाखका कारबार हो रहा था, अतः धीरे धीरे बाबाजीके पिता अब लखपती हो गये थे। यद्यपि पिताकी इच्छा थी कि दोनों पुत्र इस कारबारसे करोड़पति बननेकी चेष्टा करें परन्तु इन दोनों भाइयोंने पिताकी मृत्युके उपरान्त न जाने क्यों, घरकी एक-एक वस्तुको लातसे ठुकरा दिया और तीन सालमें ही संन्यासी हो गये। एकने अपना नाम रखा स्वामी घोसलानन्द, और दूसरेने ढकोसलानन्द। बड़े भाई स्वामी घोसलानन्दने सङ्कल्प किया कि जब तक 'हम लाख वर्ष कैसे जियें' के उपाय नहीं जान लूँगा तब तक तप करूँगा, और छोटे भाई स्वामी ढकोसलानन्दने संकल्प किया कि जबतक 'लखपती बननेके उपाय' नहीं खोज लूँगा तबतक शरीरको बुद्धकी तरह कसूँगा।

'हम लाख वर्ष कैसे जियें' वाले बाबाजीने कहाँ तपस्या की

और वे सफल हुए कि नहीं, इसका पूरा पता अभी तक किसीको नहीं, परन्तु 'लखपती बननेके उपाय' जाननेका संकल्प करने वाले बाबाजीने लगातार बारह वर्ष तक हिमालयकी बरफमें लोटकर सिद्धि प्राप्त करके ही दम तोड़ा। हमें आप लोगोंको यह सूचित करते हुए दुःख होता है कि बारह वरसतक बरफमें लोटनेवाले बाबाजी इन उपायोंके निकालनेपर हमेशाके लिये ठण्ढे पड़ गये परन्तु उनकी इस उदारता और तपस्याको जानकर कौन उनका आभारी न होगा ?

मेरे हाथ ये उपाय कैसे लगे, इसका भी एक इतिहास है। परन्तु एक तो हम लोगोंमेंसे अनेक भाई स्कूल और कालेजके विद्यार्थी होंगे और बहुत सम्भव है इतिहासका प्रकरण देखतेही लेख छोड़ दें दूसरे व्यर्थकी बातोंसे विलम्ब ही होगा, अतः मैं इस इतिहासको यहीं पर दफनाये देता हूँ। हाँ, केवल दो छोटी-छोटी बात और कहूँगा।

(१) मुझे लखपती बननेके उपाय बतलाते हुए हर्ष एवं सन्तोष अनुभव हो रहा है, क्योंकि भारतकी न जाने कितनी कलायें एवं 'गुप्त मन्त्र' इसीलिये नष्ट हो गये कि जाननेवाले मरनेपर अपने साथ ही लेते गये।

(२) मैं बड़े भाई बाबा घोसलानन्दकी खोजमें भी हूँ। यहाँ तक पता लग गया है कि वे जापानके किसी ज्वालामुखीके भीतर तप रहे हैं। यदि मिल गये तो किसी समय आप लोगोंको 'हम लाख वर्ष कैसे जियें' इसके भी उपाय बतलाऊँगा। बस, तभी तो लखपती बनकर लाख वर्ष जीने में आनन्द आयेगा। तो अब लखपती बननेके उपाय देखिये।

उपाय नं० १—आप इस वाक्यको जीवन-सिद्धान्त बनाइये कि हमें लखपती बनना है। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते

माँगते-ताँगते, एक क्षण भी इस वाक्यको न भूलिये। मकानके भीतर, मकानके बाहर, पहिननेके कपड़ोंमें, सभी जगह एक बार इञ्च-इञ्च पर इसी वाक्यको लिखा लीजिये कि हमें लखपती बनना है। कोई कहे, 'जरा सुनिये तो' आप कहिये 'हम कुछ नहीं सुनेंगे हमें अवकाश कहाँ ? हमें लखपती बनना है।' कहनेका मतलब यह कि धुनके पक्के बनिये, धुनके मुनक्के खाइये और लखपती बनकर लोगोंके छक्के छुड़ाये !

उपाय नं० २—एक एकान्त कमरेमें, जहाँ आपके घरके कोई अन्य व्यक्ति, खासकर आपकी श्रीमतीजी (यदि हों तो) भी न जा सकें, एक आसनपर घुटने टेक कर बैठ जाइये। फिर दोनों हाथोंकी उङ्गलियाँ आपसमें फँसाकर उन्हें कोहनियोंतक आमने-सामनेकी जमीनमें अच्छी तरह जमाकर रखिये। अब सिरको दोनों हाथोंके बीच तालूके बल अच्छी तरह जमाकर दोनों पैरोंको तान दीजिये। इसके बाद शरीरका बोझ सिर पर छोड़ते हुए पैरोंको शरीरकी ओर खिसकाइये, ताकि शरीर का भार सिरपर पड़ता जाय। जब पैर काफी सरक आवें और सिरपर भार भी काफी मालूम होने लगे तो उन्हें घुटने मोड़ते हुए बहुत धीरे-धीरे ऊपरको उठाइये। पैर जमीन से उठ जानेपर, जब तक कमर एक सीधी लाइनमें न हो जायँ, पैरोंको घुटनेसे मोड़े रहिये। कमर तक सीधे खड़े हो जाने पर धीरे-धीरे पैर खोलिये और ऊपर उठाते हुए बिलकुल सीधे तान दीजिये। बस अब एसे ही तबतक खड़े रहिये, जबतक एड़ीका पसीना बहकर चोटी तक न आ जाय।

कहिये क्या समझे ? खाक ही तो समझे न ? कहा था कि बहक जाऊँ तो संकेत कीजियेगा और आप सो गये ! लखपती

बननेके उपाय बतानेके बजाय, जानते हैं, क्या बता गया? शीर्षासन करनेका तरीका। लखपती बननेके पहले ही लखपतीका नशा इसे कहते हैं।

यद्यपि बुद्धिमान लोग कहते हैं कि लखपती बननेके लिये शीर्षासन भी कभी-कभी जमाने पड़ते हैं और एड़ी-चोटीका पसीना एक करना पड़ता है, लेकिन फिर भी आप लोग घबड़ाइये नहीं। परिश्रम करके लखपती बनना होता तो आप अबतक बन चुके होते, और परिश्रम करके लखपती बने तो मेरे उपाय किस कामके? अतः भूल जाइये उपाय नं० ३ देखिये।

उपाय नं० ३—आप इन महीनेके शेष दिनोंमें अच्छी तरह तैयारी कीजिये। इसलिये नहीं कि 'चीन-जापान' की लड़ाईमें जाना पड़ेगा, बल्कि इसलिये कि एक नये नुस्खेका जायका चखना होगा।

तारीख एककी शामको ही घड़ीमें अलार्म भरकर सो जाइये। रातके बारह बजे अलार्म बजेगा। आप उसी समय चारपाई छोड़ दीजिये और केवल एक तांबेका पैसा लेकर निकल आइये। आपको विश्वास रखना चाहिये कि इस समय आपके दरवाजेकी गलीमें मनुष्य नामका कोई जीव नहीं मिलेगा। हाँ, कुत्ता कहीं बैठा हो तो उसे भगा दीजिये और पेटके बल बीच गलीमें लेट जाइये। साथके पैसेको जमीनपर छोड़ दीजिये और घूम-घूम जसे दाँतोंसे बार-बार छोड़िये, उठाइये। इस प्रकार लगभग चार घण्टे तक, जब तक दूसरे आदमी न उठें, अपना अभ्यास कीजिये।

क्या कहा—"नहीं समझे?"

बहुत ठीक है। समझ ही होती तो यह क्यों लिखना पड़ता?

मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि उपाय जानता हूँ, परन्तु समझ की कमी के कारण मैं भी समझा नहीं पाता।

अच्छा, फिर सुनिये। मैं यह कहना चाहता था कि एक-एक पैसेको दाँतके बल पकड़ना सीखिये। लेकिन इस प्रकार नहीं, बल्कि इस प्रकार—

उपवास करनेसे अधिकसे-अधिक भोजन-खर्च ही बचेगा। दिनभर उपवास न रख सकिये, तो जबतक पानी पीनेसे पेट भरे, कोई चीज न खाइये। अधिकसे अधिक दिन कपड़े न धुलाइये, हजामत न बनवाइय और इसी प्रकार अन्य कामोंसे पैसे बचाइये।

बीमार एक तो पड़िये ही नहीं और पड़िये भी, तो डाक्टर को बुलाकर अथवा दवा आदिमें धनको न गँवाइये। जो जितने दिनके लिए आया है, जियेगा, और जरूर जियेगा—भूख मारकर जियेगा।

इसके अतिरिक्त दान-धर्मकी धाँधलीमें न पड़िये और मित्रोंके माया-जालमें न फँसिये। कोई मित्र या अतिथि घर तक आ भी जाय तो ऐसी गमगीन सूरतसे स्वागत कीजिये कि बेरंग लौट जाय। इन लोगोंके लिये जिस ढङ्ग से किसी चीजका खर्च न पड़े, इसके उपाय दिन-रात सोचते रहिये। उदाहरणके तौरपर, मान लीजिये कि ये आनेवाले सिगरेट पीते हैं, आप कमरेमें कागजमें धूम्रपान निषेध (स्मोकिंग स्ट्रिक्टली प्रोहिबीटेड) लिखकर लगा दीजिये। साइनबोर्ड न बनाइयेगा, नहीं तो खर्च अधिक पड़ेगा।

इससे भी अधिक एक खर्चपर विशेष ध्यान देना। वह खर्च है बच्चोंका पढ़ाई-खर्च। अभी हालमें ही अर्थशास्त्र-

विशारद लाला अहमक प्रसाद ने हिसाब लगाया था कि एक पिता एक बालक की फीसमें ३) मास खर्च करता है, यदि बालक का पढ़ाना बन्द कर दे तो सालमें वह ३६) आसानी से बचा सकता है। इस प्रकार पाँच वर्षमें यह रकम १८०) होती है। यदि ये रुपये सेविंग-बैङ्कमें जमा कर दिये जायँ तो ब्याज से लगभग २५ घरका वर्ष भरके प्याजका खर्च आसानीसे चल सकता है। लालाजी प्याज खाते थे, उन्होंने प्याज ही का नाम बताया। आप प्याज नहीं खाते, तो इसी प्रकार किसी दूसरी वस्तुका खर्च समझ लीजिये।

इसी समय चलने-फिरनेमें जो कुछ खर्च होता है, उसका भी हिसाब समझ लीजिये। जूते एक तो पहनिये नहीं, यदि पहनिये भी तो बचाकर। ट्राम आदि सवारियोंपर पहले तो चढ़िये ही नहीं, और चढ़िये भी तो कण्डक्टरको धोखा देते हुए। जिस प्रकार हो टिकट न लीजिये। रेलसे यात्रा करनी पड़े तो सौ-सौ धक्के खाकर 'मंजिले मकसूद' पर पहुँचिये, परन्तु टिकट न लीजिये। काम तुच्छ है, परन्तु ध्यान रहे, बूँद-बूँदसे तालाब भरता है, और कण-कणसे पृथ्वी बनी है। सम्भव है कि लखपती होनेतक लोग आपको आला नम्बरका कँजूस समझें, परन्तु ध्यान रखिये, लखपती बन जानेपर यही आपको लेमन-जूसकी गोली समझेंगे। 'लखपती होनेपर भी कोई शान नहीं' यह आपका गुण होगा।

उपाय नं० ४—भावी लाभका ध्यान बराबर बनाये रखिये। कौन लौटरी कब पड़ती है, टिकट किसके पास आते हैं, सेल कबसे होता है तथा किस मुहूर्तमें टिकट खरीदनेसे आपका ही नम्बर निकलेगा आदि बातोंकी फिक्र दिन-रात रखिये। लौटरी

पड़ेगी, तो निकलेगी जरूर, और बहुत सम्भव कि रुपया आपके पास आने का मनसूबा बाँध रहा हो।

उपाय नं०, ५—एक दिन उपवास रखकर रातमें सोते समय आप हमारे स्वामी घोंसलानन्दजी का नाम एक लाख बार जप डालिये। 'विष्णु सहस्रनाम' की तरह इस जपका नाम है 'घोंसलानन्द-लक्ष-नाम'। नींद आते ही आपकी मुंदी हुई आँखें खुल जायँगी। आपको आकाशसे एक विमान जाता दिखाई पड़ेगा और यह भी दिखाई पड़ेगा कि स्वर्गके खजाञ्ची कुबेर महाराज नोटोंके पुलिन्दे आपके ऊपर फेंक रहे हैं। आप सावधानीसे पाँच-पाँच दस-दस, सौ-सौके नोट इकट्ठाकर लीजिये और जेबोंमें ठूँस-ठूँस कर भरिये। बन्द कर मजबूतीके साथ दोनों हाथोंसे दबाये रखिये। इसके बाद अब धीरे-धीरे आँखें खोलिए आँखें भी बड़ी सावधानी से खोलियेगा। जरा-सी असावधानी की कि बने-बनाये भाग्य पर पानी फिर जायगा, इसे नोट कर लीजिये।

उपाय नं० ६—उपाय नं० ६ क्या बताऊँ ? अब इस समय मुझे जरा जल्दी है, और अभी तक केवल पाँच उपाय बता सका हूँ। ९९९९५ उपाय अभी बाकी ही पड़े हैं। और नहीं तो क्या ? लखपती बननेके लिये पूरे एक लाख उपाय हैं। आप भी तो कुछ जानते हैं, और जानते ही क्यों, कभी-कभी अभ्यास भी तो करते रहते हैं। परन्तु काम जारी रखिये।

अच्छा, भाई भावी लखपतरायजी, नमस्ते !

कहावत-कल्पद्रुम

भाई साहब, चौंकिये नहीं। 'गोल-मटोल-कल्लोल कहावत कल्पद्रुम' किसी जानवर का नाम नहीं, यह तो उस लोकोक्ति-कोषका नाम है, जिसके लिये यह आपका यह हिन्दी-मन्दिरका पुजारी आज बरसोंसे एड़ी-चोटीका पसीना एक कर रहा था। बात यह है कि आप लोग यह तो जानते ही हैं कि लोकोक्तियाँ अथवा कहावतें भाषा-सुन्दरीके बिछुवे और पायजेब हैं। अतः यदि आपलोग भाषा-सुन्दरीको इन अलंकारोंसे अलंकृत करेंगे तो वह निश्चय ही छमा-छम करती देख पड़ेगी, अन्यथा बाल-विधवाकी तरह सिर्फ आँखें सेंकनेकी ही कठपुतली बन जायगी।

हिन्दी भाषा-सुन्दरीके पास अभी तक ये बिछुवे और पायजेबें नहीं थीं, यह हम कैसे सह सकते हैं; परन्तु आपलोगोंको यह तो मानना ही पड़ेगा कि ये बिछुवे और पायजेबें विक्रमादित्यके जमाने की हैं। लोकोक्तियोंका प्रयोग समयानुसार होना चाहिए। किन्तु कितने खेदका विषय है कि समय तो हमसे एक महाजन की भाँति तकाजा करता है और हम अकर्मण्य स्वर्णकारकी भांति कानमें तेल डाले बैठे हैं।

बात ठीक भी तो है, कोई हमें खुशखबरी देता था और हमलोग फूलकर कुप्पा हो जाते थे तथा उसी आवेशमें कह बैठते थे कि

"आपके मुँहमें घी-शक्कर।" परन्तु ज़रा गौर करनेकी बात है कि बीसवी सदी, अंग्रेजी शिक्षाका युग और घी-शक्कर! बेवक्तकी शहनाई तो हुई। कौन भलामानुष घी-शक्करको मुँहमें रखना पसन्द करेगा? फिर कुल्ला करनेका भी तो झंझट रहेगा! दोपहरको तो यह 'घी-शक्कर' आप हो जायेगा। शहरोंमें पानीके नल तो दस बजे ही बन्द हो जाते हैं न? अतः क्या आपलोगों की समझसे यह ठीक नहीं है कि वह लोकोक्ति बदल दी जाय? हमारी रायमें तो अब इस लोकोक्तिको इस प्रकार कहना चाहिये—

"आपके मुँहमें बीड़ी-सिगरेट।"

यही नहीं, एक उदाहरण और लीजिये—"नौ सौ चूहे खा के बिल्ली चली हज्जको।" इसमें, बिल्ली चूहे खाती है, तब नौ सौ भी खा सकती है, परन्तु 'हज्जका सफर, यह खूब कही!' अस्वाभाविक ही तो है! अब तो यदि इसके स्थानपर 'सारा लन्दन घूमके चन्दन लगायेंगे' कहा जाय तो क्या आपलोगों को कोई एतराज है?

यही हाल मुहावरोंका भी है। अभी तक लोग यही कहा करते थे कि 'वे गर्दन झुकाये चले जा रहे थे।' परन्तु यदि इसी इसी वाक्यको थोड़ा बदलकर कहें कि 'सती-साध्वीकी भांति गर्दन झुकाये चले जा रहे थे' तो सुननेवालेको 'कैसे' पूछनेका साहस ही न पड़ेगा। अभ्यासके लिये दो-एक मुहावरे और सुनिये—

"नववधूकी तरह उन्होंने मेरे कमरेमें प्रवेश किया!"

"क्या 'अज्ञात-यौवना' जैसे खड़े हो?"

"इस सोहागरातकी-सी 'नहीं-नहीं' से क्या लाभ?"

श्राप और वरदान भी मेरे 'कोष' के अनुसार इस प्रकार होने चाहिये।

(वरदान)

'ईश्वर आपको रोज सिनेमा दिखाये।'

'भगवान आपकी टेबुलसे चाय-बिस्कुट तब तक न हटाये, जब तक अंग्रेजोंका राज्य रहे।'

'ईश्वर आपको सेठसे आनरेरी मैजिस्ट्रेट करे।

(श्राप)

'ईश्वर आपके चप्पलका फीता ऐसी जगह तोड़े, जहाँ दो-चार मीलपर भी मोची न हो।'

'भगवान चाहेगा तो जहाँ जाओगे 'नो वेकन्सी' का ही साईनबोर्ड दिखाई पड़ेगा।' आदि आदि।

बन्धुओ ! मैं मानता हूँ कि यह काम नागरी-प्रचारिणी-सभा और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका था, परन्तु यदि मैंने कर दिया तो कोई पाप नहीं किया है। बड़ी-बड़ी संस्थाओंके कार्यको हलका करना तो इस अकिञ्चनका सदा ध्येय रहा है। परन्तु जब रास्ता ही नहीं मिलता, तो लाचारी रहती है। अतः इस 'कहावत कल्पद्रुम' को तैयार कर बहुत कुछ सिर का भार उतारा गया है और आनन्दका अनुभव हो रहा है।

परन्तु यह 'कहावत–कल्पद्रुम' पूर्ण है इसका स्वप्नमें भी ख्याल न कीजियेगा। यह तो केवल नमूना है। पूरी पुस्तकका कलेवर तो इतना बड़ा है कि मैं दिन-रात यही सोच-सोच कर बरफकी भांति घुलता रहता हूँ कि यह आपके पास तक

पहुँचेगी कैसे ? खैर नमूना पेश कर रहा हूँ। परन्तु ध्यान रहे, रहे, धोखा न खाइयेगा। इस 'कहावत-कल्पद्रुम' के उन कहावतोंको न पाइयेगा, जो असली कोकशास्त्र वाली हैं। उनके लिये तो किसी समय स्वयं मिलना होगा।

(१) मूछ मुड़ाते ही नौकरी।

(२) बाल बढ़ा लिये कवि बन गये।

(३) खोटी चवन्नी कांग्रेसके नाम।

(४) पुलिस की माया, कहीं दंड कहीं दाया।

(५) गये थे पेन्शन लेने, मालगुजारी जमा करनी पड़ गई !

(६) स्कीम आइस्क्रीम में पड़ी है।

(७) होटलमें रेडियो बजे साहब चाय पियें।

(८) साहेबकी दौड़ होटल तक।

(९) पुलिसमें नौकर, घूस से नफरत !

(१०) कलके लड़के बहूबाजारकी सैर !

अलबेले रिसर्च-स्कालर

स्वामी 'जैसा' रिसर्च-स्कालर अब इस भारतवर्षमें नहीं होगा, यह तो कैसे कहा जा सकता है; परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि अभी तक न तो हुआ था और न इस समय है। कोई चीज होती तो मैं भी कह देता—हजारोंमें एक चीज थे, परन्तु अफसोस! वे थे व्यक्ति और व्यक्ति भी कैसे कि व्यक्तित्व सबसे अलग! पास-पड़ोसमें तो क्या, एकबार आप भारत-भ्रमण कर आइये, उनका जैसा रिसर्च-स्कालर न मिलेगा, न मिलेगा, न मिलेगा!

जरूर ही घर-घर घुसकर आदमी-आदमीसे पूछा होगा; अवश्य ही कुओंमें बाँस डलवा-डलवाकर हस्तलिखित प्रतियाँ खोजवायी होंगी; निश्चय ही रातभर जाग-जगाकर, गुड़-गुर्च और काली मिर्च खाकर ही रिसर्चकी होगी, अन्यथा एक तुलसीदासके विषयमें ही इतनी प्रचुर सामग्री जुटा लेना हरेक का काम नहीं है। वे आदमी थे, कि सर्च-लाइट? जिस पहलुपर प्रकाश डाला लोगोंकी आँखें झिलमिला गयीं। गीताकिशोर जैसे शास्त्रीके मुँहसे भी बरबस निकल पड़ा—'भाई वाह!' और मैं सच कहता हूँ, तुलसीदास जीवित होते तो गलेसे लिपट कर प्यार किये बिना न मानते।

मेरा तो पहले जानेका विचार ही था, क्योंकि आजकल जैसे रिसर्च-स्कालर होते हैं वह किसीसे छिपा नहीं है; परन्तु जब दैनिक पत्रोंमें सूचना पढ़ी कि स्वामीजीने तुलसीदासकी रिसर्चमें ही बाल सफेद कर दिये हैं तथा केवल इसी सम्बन्धमें ही अपनी खोज और अपने विचार पेश करेंगे तो मन न माना।

पं० गीताकिशोर शास्त्रीको लेकर मैं नंगे बदन ही सभामें उपस्थित हुआ।

नगरके प्रायः सभी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे इकट्ठे थे। अभी हम दोनों सज्जन बैठ भी न पाये थे कि स्वामीजीने प्लेटफार्मसे कहा—

'भाइयो ! मैं एक साधारण रिसर्च-स्कालर हूँ, परन्तु हजारोंकी संख्यामें आपलोगोंको देखकर दङ्ग हूँ। कदाचित यह 'तुलसी' का ही प्रेम है, जो आपलोगको यहाँ तक घसीट लाया है। यदि आपलोगोंमें 'स्वामी' जीके प्रति भक्ति न होती तो मुझ अकिञ्चनमें इतनी शक्ति कहाँ थी कि अपने भाषणके लिये इतनी भीषण भीड़ इकट्ठी कर लेता। खैर ! धन्यवाद।

बन्धुओ। यूं तो मेरे पिताजी गोस्वामी तुलसीदास और उनकी रचनाओंके परम भक्त थे, अतः सात वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने मेरे हृदयमें भक्ति-भवनकी पहली ईंट रख दी थी, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो असली भक्ति मेरी 'गधापचीसी'की अवस्थाके बादसे प्रारम्भ होती है। जीवनके इस छब्बीसवें वर्षमें राजापुरसे तीन मीलकी दूरीपर 'रंकगाँव' नामक कस्बेमें एस०डी० कालेज (सज्जन-दुर्जन कालेज) का विद्यार्थी था। जरूरतसे कहिये अथवा सौभाग्यसे कहिये कि एक दिन मुझे वहाँके एक पंसारीकी दूकानपर जाना पड़ा। पंसारीके यहाँसे दो पैसेका गर्म मसाला लेकर जिस समय मैं लौट रहा था, मेरी निगाह गर्म मसालेकी पुड़ियाके कागजपर पड़ी। हस्तलिपिमें पहले तो लिखा था—"डाक्टर तुलसीदास" और नीचे छोटे अक्षरों में लिखा था 'चकल्लस मिश्र'।

'तुलसीदास' और 'चकल्लस मिश्र' का नाम देखते ही मेरी उत्सुकता बढ़ी, क्योंकि आप लोग जानते ही होंगे कि चकल्लस मिश्रने अवश्य ही 'तुलसी' के विषयमें गूढ़तम बातें खोज निकाली

होंगी अतः मैंने पुड़ियासे गर्म मसाला जमीनपर फेंक दिया और खाली कागज लेकर पासके कुएँ की जगतपर बैठकर पढ़ने लगा। विवरण इस प्रकार था :—

"डा० तुलसीदास, जिन्हें अब हमलोग गोस्वामी तुलसीदासके नामसे जानते हैं, इटावाके 'ढेबा अस्पताल' के सिविल सर्जन थे। लार्ड कर्जनके जमानेमें जब लग-भाग तीन दर्जन सिविल सर्जन इस पेशे द्वारा द्रव्योपार्जन कर रहे थे, डाक्टर तुलसीदासने अपनी प्रेक्टिस छोड़कर संन्यास क्यों ले लिया इसमें बड़ा मत-भेद है। कोई तो कहते हैं कि एकबार किसीने उनको रोगिणी से प्रेम करते पकड़ लिया था, अतः उन्हें समाजसे घृणा हो गई थी, और कोई सज्जन कहते हैं कि अपने समयके सभी सिविल सर्जनोंमें वे कमजोर पड़ते थे, अतः खिल्ली उड़ाये जानेके डरसे पहले तो वे ढाका गये परन्तु जब वहाँ फाका करनेकी नौबत आई तो दिल्ली भागे। दिल्लीमें पहुँचते ही जब उनकी पालतू पिल्ली और बिल्ली मर गई तो वे जोधपुर गये। जोधपुरमें उन्हें बोध हुआ और यही पर वे मूंड़ मुड़ाकर संन्यासी हो गये। कुछ भी हो, इतना तो मानना पड़ेगा कि डाक्टरसे गोस्वामी बनकर तुलसीदासजीने अपना और समाजका दोनों का ही कल्याण किया......

"सज्जनो! उस पन्नेमें मुझे इतना ही विवरण मिला। चकल्लस मिश्रने आगे क्या लिखा है, यह जाननेके लिये मेरी उत्सुकता आतुरतामें परिणत हो गयी और मैं उल्टे पाँव पँसारीकी दुकानपर पुनः गया भी कि कदाचित् इस उपयोगी पन्नेसे सम्बन्धित दूसरे पन्ने मिल जायँ, परन्तु मुझे कहते हुए दुःख होता है कि पँसारीने पूरी पुस्तक होनेका जिक्र तो किया किन्तु साथ ही यह भी कहा कि मैंने पन्ने अन्त से फाड़ने शुरू किये थे अतः अन्तमें

अब यही प्रारम्भका पन्ना रह गया था, जिसमें मसाला लपेटकर मैंने आपको दिया है। पँसारीकी इस प्रकारकी निराशापूर्ण बातें सुनकर मैं वहीं माथा ठोंककर बैठ गया और फिर लगभग दो घण्टे तक न उठ सका। बन्धुओ! यदि गँवार पँसारीके द्वारा चकल्लस मिश्र जैसे विद्वान की पाण्डुलिपी नष्ट न हो जाती तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि 'तुलसीदासजी का' वास्तविक विस्तृत विवरण एक ही स्थानमें मिल जाता और वह भी उस रूपमें कि फिर न तो प्रमाणकी आवश्यकता होती और न मुझे फिर दूसरी प्रतियाँ ही खोजनी पड़तीं।

खैर, चकल्लस मिश्रके इस पन्नेके बाद 'तुलसी' के सम्बन्ध में कुछ परिचय देनेवाली जो दूसरी वस्तु मिलती है वह है मुरादाबादके मुस्लिम म्युजियममें रखी हुई तुलसीदास की छतरी। इस छतरीके कपड़ेमें दो दोहे जो रेशमसे काढ़े हुए हैं, गोस्वामीजीके एक अत्यन्त गूढ़ जीवनका रहस्योद्‌घाटन करते है। बात यह है कि आजकल साधू-सन्त मादक द्रव्योंका सेवन अधिक करते हैं। अतः यह जाननेकी इच्छा स्वाभाविक ही है कि तुलसीदासजी इन मादक द्रव्योंका सेवन करते थे या नहीं। सब मादक द्रव्योंका सेवन करते थे, इसका तो अभी पता नहीं चला है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि छतरी वाले प्रथम दोहेके अनुसार 'चरस' और दूसरेके अनुसार 'गांजा' और 'भंग' के प्रति उनका अगाध प्रेम प्रकट होता है। दोहे इस प्रकार हैं—

दोहा–(१) रे मन! सबसे निरस है, सरस 'चरस हवै' सों होहि।
खली सिखावन देत है. निसदिन 'तुलसी' तोहिं॥
(२) बार बार बर माँगहूँ, हरसि देहु श्री रङ्ग।
घटहिं न सन्तनकी कबहुँ, तुलसी गाँजा भंग॥

प्यारे भाइयो! यह तो हुआ तुलसीदासजीका मादक द्रव्योंके प्रति प्रेम, परन्तु यदि ध्यानसे देखा जाय तो उनकी रचनाओंसे

साधु-सन्तोंके केवल इसी स्वभावका परिचय नहीं मिला। ऐसी ही कितनी अन्य और बातें भी उनके छाते की डंडी पर खुदी हैं-

बन्दउँ सन्त समान चित, चित लेटे जम्हुँहाँय।
राम भजन चेला करैं, अपनेको अघुवाय॥

तथा—

सन्त सरल चित जगत हित, पट परमेश्वर लागि।
खायँ प्रेम सन डारि घी, सूजी शक्कर पागि॥

आदि-आदि दोहे इस बातका ज्वलन्त उदाहरण हैं कि उनके कालमें भी 'साधु—सन्त' भगवत्-भजन कम करते थे और खाने पीनेका ही ध्यान अधिक रखते थे। भजन आदिकी जिम्मेदारी अधिकांशमें चेलोंके सिरपर थी। गुरु सन्त तो आनन्दसे घी-शक्कर और सूजी मैदा तल-तलकर आनन्दसे खाते थे और अण्टा चित्त पड़े-पड़े जम्हाई लिया करते थे। हाय! भगवान! कहाँ गये वे दिन! आज हम स्वामी लोग यदि ऐसा करते हैं तो लोग मजाक उड़ाने लगते हैं।

हाँ, तो महानुभावो! मैं यही कह रहा था कि ऐसी उनकी अनेक रचनाएँ हैं, जिनसे उनके समयके सामाजिक रहन-सहन पर काफी प्रकाश पड़ता है। सोरों [शहरका नाम है] के घरसे एक बार चोरोंने माला उठाया। कहते हैं कि इस मालके साथ वे नोटके धोखेमें एक उतना ही बड़ा रद्दी कागजका टुकड़ा भी उठा लाये। भूल मालूम होनेपर उन्होंने कागजको जमीन पर डाल दिया और अन्य माल असबाब लेकर चलते बने। सुनते हैं वह कागज एक बड़ विद्वानके हाथ लगा और उसने उसी कागजके आधार पर यह पता लगाया कि समाज में विवाहित पुरुष उन दिनों भी 'खसम ही कहलाता था और यदि खसम अपनी स्त्रीसे उम्र और कदमें छोटा पड़ता था तो उन दिनोंमें भी खसमके लिये खतरा वैसे ही था जैसे आज़काल। तुलसीदासजी कहते हैं

कि यह कृपा पत्नीकी ही है कि वह ऐसे खसमको पति ही समझती है, अन्यथा पतिके लिये रोज ही सङ्कट आ सकता है। सोरोंसे चारों द्वारा चुराये हुए कागजमें दोहा इस प्रकार था—

तुलसी छोटे खसम कर, नारी राखत मान।
नहिं चाहति तो पकरि कै, नितहि उखारति कान॥

"यह दोहा बरेलीके............"

स्वामीजीने अभी बरेलीका नाम लिया ही था कि एक गँवार ने कहा "हाँ, यह स्वामीजी तो शायद वही हैं जो मुझे बरेलीके पागलखानेमें मिले थे। मेरे एक पड़ोसी, जो अभी सात ही दिन पहले बरेलीके पागलखानेसे छूटकर आये थे, कहने लगे हाँ, यह तो वहाँ से भाग निकले थे, वही स्वामी हैं। इनको पकड़नेके लिये तो २००) का इनाम है।"

२००) का इनाम बहुत होता है। सुनते ही रङ्गमें भङ्ग होने लगा। चारों ओरसे "पकड़ो पकड़ो, जाने न पावे" की धूम मच गयी। कुछ गंवार प्लेटफार्मकी ओर बढ़े भी। उधर स्वामीजीको भावी आपत्तिका पता लगा तो वे भागे। एक बार 'यह गये, वह गये' होते वे आँखोंसे ओझल हो गये और तबसे आज तक नहीं दिखाई पड़े।

खेद हुआ पं० गीताकिशोर शास्त्री को, वे मन-मसोसकर कहने लगे—पागल-वागल चाहे जो कुछ हो पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि था विद्वान्। मैंने तो आजतक ऐसा अलबेला रिसर्च-स्कालर नहीं देखा।

और मैं? मैं दिन रात यह सोचता हूँ कि स्वप्नकी बातें यदि सच होतीं तो तुलसीके सम्बन्धमें वह रिसर्च पेशकर देता कि तुलसीके ऊपर रिसर्च करनेवाले सभी रिसर्च-स्कालर मेरा लोहा मानते।